શ્રી યશોવિજયજી
જૈન ગ્રંથમાળા
દાદાસાહેબ, ભાવનગર.
ફોન : ૦૨૭૮-૨૪૨૫૩૨૨
૩૦૦૪૨૪૬

1588

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

जैनधर्म की उदारता

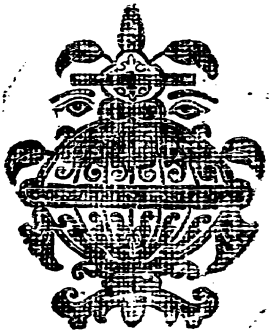

लेखक—
परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ॐ

जैनधर्म की उदारता

लेखक—

पंडित परमेष्ठीदासजी जैन न्यायतीर्थ

प्रकाशक—

जौहरीमलजी जैनी सर्राफ

दरीबा कलाँ, देहली।

प्रथमवार १०००	सन् १९३४ वीर निर्वाण संवत् २४६०	मूल्य =)॥

गयादत्त प्रेस, बाग दिवार देहली में छपा।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

विषयानुक्रमणिका ।

	पृष्ठ
१–पापियों का उद्धार	१
२–उच्च और नीचों में समभाव	६
३–जाति भेद का आधार आचरण पर है ...	८
४–वर्ण परिवर्तन	१३
५–गोत्र परिवर्तन	१६
६–पतितों का उद्धार	१८
७–शास्त्रीय दण्ड विधान	२५
८–अत्याचारी दण्ड विधान	२६
९–उदारता के उदाहरण	३३
१०–जैनधर्म में शूद्रों के अधिकार	३९
११–स्त्रियों के अधिकार	४७
१२–वैवाहिक उदारता	५४
१३–उपसंहार	५८

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

नम्र निवेदन

जहाँ उदारता है, प्रेम है, और सम भाव है, वहीं धर्म का निवास है। जगत को आज ऐसे ही उदार धर्म की आवश्यक्ता है। हम ईसाइयों के धर्म प्रचार को देखकर ईर्षा करते हैं, आर्य समाजियों की कार्य कुशलता पर आश्चर्य करते हैं और बौद्ध, ईशु, क्रीस्त, दयानन्द सरस्वती आदि के नामोल्लेख तथा भगवान महावीर का नाम न देख कर दुखी हो जाते हैं! इसका कारण यही है कि उन उन धर्मानुयाइयों ने अपने धर्म की उदारता बताकर जनता को अपनी ओर आकर्षित कर लिया है और हम अपने जैनधर्म की उदारता को दबाते रहे, कुचलते रहे और उसका गला घोंटते रहे! तब बताइये कि हमारे धर्म को कौन जान सकता है, भगवान महावीर को कौन पहिचान सकता है और उदार जैनधर्म का प्रचार कैसे हो सकता है?

इस छोटी सी पुस्तक में यह बताने का प्रयत्न किया गया है कि 'जैनधर्म की उदारता' जगत के प्रत्येक प्राणी को प्रत्येक दशा में अपना सकती है और उसका उद्धार कर सकती है। आशा है कि पाठकगण इसे आद्योपान्त पढ़ कर अपने कर्तव्य को पहिचानेंगे।

चन्दावाड़ी सूरत।
४-२-३४

परमेष्ठीदास जैन न्यायतीर्थ

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आवश्यकीय निवेदन

यह पुस्तक सहारनपुर निवासी बाबू रामदत्तामलजी खजाँची रेलवे के सुपुत्र चिरंजीव रतनलाल के शुभ विवाहोपलक्ष में, जो ता० ६ मार्च १६३४ ईस्वी को सौभाग्यवती शांति देवी सुपुत्री लाला जौहरीमल जैन सर्राफ के साथ सम्पन्न हुआ, प्रकाशित की गई।

—प्रकाशक

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

चि० रतनलाल (सुपुत्र बाबू रामदत्तामल खजांची रेलवे)
सहारनपुर निवासी ।

PUNJABI PRESS DELHI.

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

लोक में तीन भावनायें कार्य करती मिलती हैं। उनके कारण प्रत्येक प्राणी (१) आत्मस्वातंत्र्य (२) आत्म महत्व और (३) आत्मसुख की अकांक्षा रखता है। निस्सन्देह सब को स्वाधीनता प्रिय है; सब ही महत्वशाली बनना चाहते हैं और सब ही सुख शांति चाहते हैं। मनुष्येतर प्राणी अपनी अबोधता के कारण इन का स्पष्ट प्रदर्शन भले नहीं कर पाते पर, वह जैसी परिस्थिति में होते हैं वैसे में ही मग्न रह कर दिन पूरे कर डालते हैं। किन्तु मनुष्यों में उनसे विशेषता है। उसमें मनन करने की शक्ति विद्यमान है। अच्छे बुरे को अच्छे से ढंग पर जानना वह जानते हैं। विवेक मनुष्य का मुख्य लक्षण है। इस विवेक ने मनुष्य के लिये 'धर्म' का विधान किया है। उसका स्वभाव—उसके लिये सब कुछ अच्छा ही अच्छा धर्म है! उसका धर्म उसे आत्मस्वातंत्र्य, आत्म महत्व और आत्म सुख नसीब कराता है।

किन्तु ससार में तो अनेक मत मतान्तर फैल रहे हैं और सब ही अपने को श्रेष्ठतम घोषित करने में गर्व करते हैं। अब भला कोई किस को सत्य माने? किन्तु उनमें 'धर्म' का अंश वस्तुतः कितना है, यह उनके उदार रूप से जाना जा सक्ता है। यदि वे प्राणीमात्र को समान रूप में धर्म सिद्धि अथवा आत्म सिद्धि कराते हैं—किसी के लिए विरोध उपस्थित नहीं करते तो उन को यथार्थ धर्म मानना ठीक है। परन्तु बात दर-असल यूं नहीं है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इस्लाम यदि मुस्लिम जगत में भ्रातृभाव को सिरजता है तो मुस्लिम-बाह्य -जगत उसके निकट 'काफिर'—उपेक्षा जन्य है। पशु जगत के लिए उसमें ठौर नहीं—पशुओं को वह अपनी आसाइश की वस्तु समझता है! तब आज के इस्लाम वाले 'धर्म'का दावा किस तरह कर सक्ते हैं, यह पाठक स्वयं विचारें।

वैदिक धर्म इस्लाम से भी पिछड़ा मिलता है। सारे वैदिक-धर्मानुयायी उसमें एक नहीं हैं! वर्णाश्रम धर्म—रक्त शुद्धि की भ्रान्तमय धारणा पर एक वेद भगवान के उपासकों को वे टुकड़ों टुकड़ों में बांट देते हैं। शूद्रों और स्त्रियों के लिए वेद-पाठ करना भी वर्जित कर दिया जाता है। जब मनुष्यों के प्रति यह अनुदारता है, तब भला कहिये पशु-पक्षियों की वहाँ क्या पूछ होगी? शायद पाठकगण ईसाई मत को 'धर्म' के अति निकट समझें! किन्तु आज का ईसाई जगत अपने दैनिक व्यवहार से अपने को 'धर्म' से बहुत दूर प्रमाणित करता है। अमेरिका में काले-गोरे का भेद--यूरोप में एक दूसरे को हड़प जाने की दुर्नीति ईसाईयों को विवेक से अति दूर भटका सिद्ध करने के लिये पर्याप्त है।

सचमुच यथार्थ 'धर्म' प्राणीमात्र को समान रूप में सुख-शान्ति प्रदान करता है—उसमें भेद भाव हो ही नहीं सकता! मनुष्य मनुष्य का भेद अप्राकृतिक है! एक देश और एक जाति के लोग भी काले-गोरे-पीले-उच्च-नीच-विद्वान्-मूढ-निर्बल-सबल—सब ही तरह के मिलते हैं। एक ही मां की कोख से जन्मे दो पुत्र परस्पर-विरुद्ध प्रकृति और आचरण को लिए हुए दिखते हैं। इस स्थिति में जन्मगत अन्तर उनमें नहीं माना जा सक्ता। हम कह चुके हैं कि धर्म जीव मात्र का आत्म-स्वभाव (अपना२ धर्म) है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इस लिये धर्म में यह अनुदारता हो ही नहीं सक्ती कि वह किन्हीं खास प्राणियों से राग करके उन्हें तो अपना अंकशायी बनाकर उच्च पद प्रदान करदे और किन्हीं को द्वेष भाव में बहाकर आत्मोत्थान करने से ही वञ्चित रक्खे । सच्चा धर्म वह होगा जिसमें जीवमात्र के आत्मोत्थान के लिये स्थान हो । प्रस्तुत पुस्तक को पढ़ने से यह स्पष्ट हो जाता है कि निस्सन्देह जैनधर्म एक परमोदार सत्य धर्म है—वह जीवमात्र का कल्याणकर्ता है ! धर्म का यथार्थ लक्षण उसमें घटित होता है ।

विद्वान् लेखक ने जैन शास्त्रों के अगणित प्रमाणों द्वारा अपने विषय को स्पष्ट कर दिया है । ज्ञानी जीवों को उनके इस सद्प्रयास से लाभ उठाकर अपने मिथ्यात्व जाति मद की मदांधता को नष्ट कर डालना चाहिये । और जगत को अपने बर्ताव से यह बता देना चाहिये कि जैनधर्म वस्तुतः सत्य धर्म है और उस के द्वारा प्रत्येक प्राणी अपनी जीवन आकांक्षाओं को पूरा कर सक्ता है । जैनधर्म हर स्थिति के प्राणी को आत्म स्वातंत्र्य, आत्म महत्व और आत्म सुख प्रदान करता है । जन्मगत श्रेष्ठता मानकर मनुष्य के आत्मोत्थान को रोक डालने का पाप उसमें नहीं है । मित्रवर पं० परमेष्ठीदासजी न्यायतीर्थ का ज्ञानोद्योत का यह प्रयास अभिवन्दनीय है ! इसका प्रकाश मनुष्य हृदय को आलोकित करे यह भावना है । इति शम् ।

कामताप्रसाद जैन,

एम. आर. ए. एस. (लन्दन)

सम्पादक 'वीर' अलीगंज ।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अभिप्राय

विद्यावारिधि जैन दर्शन दिवाकर पं० चम्पतरायजी जैन बैरिस्टर ने 'जैनधर्म की उदारता' को आद्योपान्त पढ़ कर जो अपना लिखित अभिप्राय दिया है वह इस प्रकार है---

'जैनधर्म की उदारता' नामक यह पुस्तक बड़ी ही सुन्दर है। इसमें जैनधर्म के असली स्वरूप को विद्वान् लेखक ने बड़ी खूबी से दर्शाया है। उदाहरण सब शास्त्रीय हैं। और उनमें ऐतराज की कोई गुंजाइश नहीं है। वर्ण व्यवस्था वास्तव में पोलिटीकल उन्नति और कयाम (स्थिति) के लिये थी, न कि आदमियों को भिन्न२ जातियों में विभाजित करनेके लिये। जैनधर्म सब प्राणियों के लिये है। किसी को अख्तयार नहीं है कि दूसरे के धर्म साधन में बाधक हो सके।

जिस अर्थ में गोत्रकर्म भाव राजवार्तिक में दिखाया गया है उस भाव में लेखक का कथन समाविष्ट हो जाता है। लेकिन गोत्र-कर्म शायद अपने असली स्वभाव में उस आकर्षण शक्ति के ऊपर निर्भर है जिसके द्वारा प्राणी उच्च या नीच योनि में खिंचकर पहुँच जाता है। ऐसी दशा में गोत्रकर्म का संबंध पैदायश के समय से ही ठीक जुड़ता है।

अन्त में मैं इस बात को कहना चाहता हूँ कि ऐसी पुस्तकों से जैनधर्म का महत्व प्रगट होता है। इनकी क़द्र होनी चाहिये।

C. R. Jain

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

परमेष्ठिने नमः ।

जैनधर्म की उदारता ।

पापियों का उद्धार ।

जो प्राणियों का उद्धारक हो उसे धर्म कहते हैं । इसी लिये धर्म का व्यापक, सार्व या उदार होना आवश्यक है। जहाँ संकुचित दृष्टि है, स्वपर का पक्षपात है, शारीरिक अच्छाई बुराई के कारण आन्तरिक नीच ऊँचपने का भेद भाव है वहाँ धर्म नहीं हो सकता। धर्म आत्मिक होता है शारीरिक नहीं। शरीर की दृष्टि से तो कोई भी पवित्र नहीं है। शरीर सभी अपवित्र हैं, इस लिये आत्मा के साथ धर्म का संबंध मानना ही विवेक है । लोग जिस शरीर को ऊँचा समझते हैं उस शरीर वाले कुगति में भी गये हैं और जिनके शरीर नीच समझे जाते हैं वे भी सुगति को प्राप्त हुये हैं। इस लिये यह निर्विवाद सिद्ध है कि धर्म चमड़े में नहीं किन्तु आत्मा में होता है । इसी लिये जैन धर्म इस बात को स्पष्टतया प्रतिपादित करता है कि प्रत्येक प्राणी अपनी सुकृति के अनुसार उच्च पद प्राप्त कर सकता है । जैनधर्म का शरण लेने के लिये उसका द्वार सब के लिये सर्वदा खुला है। इस बात को रविषेणाचार्य ने इस प्रकार स्पष्ट किया है कि—

अनाथानामबंधूनां दरिद्राणां सुदुःखिनाम् ।
जिनशासनमेतद्धि परमं शरणं मतम् ॥

अर्थात्—जो अनाथ हैं, बांधव विहीन हैं, दरिद्री हैं, अत्यन्त दुखी हैं उनके लिए जैनधर्म परम शरणभूत है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

यहाँ पर कल्पित जातियों या वर्ण का उल्लेख न करके सर्व साधारण को जैनधर्म ही एक शरणभूत बतलाया गया है। जैनधर्म में मनुष्यों की तो बात क्या पशु पक्षी या प्राणीमात्र के कल्याण का भी विचार किया गया है।

आत्मा का सच्चा हितैषी, जगत के प्राणियों को पार लगाने वाला, महा मिथ्यात्व के गड्ढे से निकाल कर सन्मार्ग पर आरूढ़ करा देने वाला और प्राणीमात्र को प्रेम का पाठ पढ़ाने वाला सर्वज्ञ कथित एक जैनधर्म है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि प्रत्येक धर्मावलम्बी की अपने अपने धर्म के विषय में यही धारणा रहती है, किन्तु उसको सत्य सिद्ध कर दिखाना कठिन है। जैनधर्म सिखाता है कि अहम्मन्यता को छोड़ कर मनुष्य से मनुष्यताका व्यवहार करो, प्राणीमात्र से मैत्रीभाव रखो, और निरंतर परहित निरत रहो। मनुष्य ही नहीं पशुओं तक के कल्याण का उपाय सोचो और उन्हें घोर दुःख दावानल से निकालो।

धर्म शास्त्र इसके ज्वलंत प्रमाण हैं कि जैनाचार्यों ने हाथी, सिंह, शृगाल, शूकर, बन्दर, नौला, आदि प्राणियों को भी धर्मोपदेश देकर उनका कल्याण किया था। (देखो आदिपुराण पर्व १० श्लोक १४९) इसी लिये महात्माओं को अकारणबंधु कह कर पुकारा गया है। एक सच्चे जैन का कर्तव्य है कि वह महा दुराचारी को भी धर्मोपदेश देकर उसका कल्याण करे। इस संबंध में अनेक उदाहरण जैन शास्त्रों में भरे पड़े हैं।

जिनभक्त धनदत्त सेठ ने महाव्यसनी वेश्यासक्त दृढ़सूर्य को फांसी पर लटका हुआ देख कर वहीं पर णमोकार मंत्र दिया था, जिसके प्रभाव से वह पापात्मा पुण्यात्मा बनकर देव हुआ था। वही देव धनदत्त सेठ की स्तुति करता हुआ कहता है कि—

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अहो श्रेष्ठिन् ! जिनाधीशचरणार्चनकोविद ।
अहं चौरो महापापी दृढ़सूर्याभिधानकः ॥३१॥
त्वत्प्रसादेन भो स्वामिन् स्वर्गे सौधर्मसंज्ञके ।
देवो महर्द्धिको जातो ज्ञात्वा पूर्वभवं सुधीः ॥३२॥

—आराधनाकथा नं० २३ वीं ।

अर्थात्—जिन चरण पूजन में चतुर हे श्रेष्ठी ! मैं दृढ़सूर्य नामक महापापी चोर आपके प्रसाद से सौधर्म स्वर्ग में ऋद्धिधारी देव हुआ हूँ ।

इस कथा से यह तात्पर्य निकलता है कि प्रत्येक जैन का कर्तव्य महापापी को भी पाप मार्ग से निकाल कर सन्मार्ग में लगाने का है । जैनधर्म में यह शक्ति है कि वह महापापियों को शुद्ध करके शुभगति में पहुँचा सकता है। यदि जैनधर्म की उदारता पर विचार किया जावे तो स्पष्ट मालूम होगा कि विश्वधर्म बनने की इसमें शक्ति है या जैनधर्म ही विश्वधर्म हो सकता है । जैनाचार्यों ने ऐसे ऐसे पापियों को पुण्यात्मा बनाया है कि जिनकी कथायें सुनकर पाठक आश्चर्य करेंगे ।

अनंगसेना नाम की वेश्या अपने वेश्या कर्म को छोड़कर जैन दीक्षा ग्रहण करती है और जैनधर्म की आराधना करके स्वर्ग में जाती है । इसके अतिरिक्त यशोधर मुनि महाराज ने मत्स्यभक्षी मृगसेन धीवर को णमोकार मंत्र दिया और व्रत ग्रहण कराया, जिससे वह मर कर श्रेष्ठिकुल में उत्पन्न हुआ । यमपाल चाण्डाल की कथा तो जैनधर्म की उदारता प्रगट करने को सूर्य के समान है । जिस चाण्डाल का काम लोगों को फांसी पर लटका कर प्राण नाश करना था वही अछूत कहा जानेवाला पापात्मा थोड़े से व्रत के कारण देवों द्वारा अभिषिक्त और पूज्य हो जाता है । यथा—

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

तदा तद्व्रतमाहात्म्यात्महाधर्मानुरागतः ।
सिंहासने समारोप्य देवताभिः शुभैर्जलैः ॥ २६॥
अभिषिच्य प्रहर्षेण दिव्यवस्त्रादिभिः सुधीः ।
नानारत्नसुवर्णाद्यैः पूजितः परमादरात् ॥२७॥

अर्थात्—उस यमपाल चाण्डाल को व्रत के महात्म्य से तथा धर्मानुराग से देवों ने सिंहासन पर विराजमान करके उसका अच्छे जल से अभिषेक किया और अनेक वस्त्र तथा आभूषणों से सन्मान किया।

इतना ही नहीं किन्तु राजा ने भी उस चाण्डाल के प्रति नम्रीभूत हो कर उस से क्षमा याचना की थी तथा स्वयं भी उस की प्रतिष्ठा की थी। यथा—

तं प्रभावं समालोक्य राजाद्यैः परया मुदा ।
अभ्यर्चितः स मातंगो यमपालो गुणोज्वलः ॥२८॥

अर्थात—उस चाण्डाल के व्रत प्रभाव को देखकर राजा तथा प्रजा ने बड़े ही हर्ष के साथ गुणों से समुज्वल उस यमपाल चाण्डाल की पूजा की थी।

देखिये यह कितनी आदर्श उदारता है। गुणों के सामने न तो हीन जाति का विचार हुआ और न उसकी अस्पृश्यता ही देखी गई। मात्र एक चाण्डाल के दृढ़व्रती होने के कारण ही उस का अभिषेक और पूजन तक किया गया। यह है जैनधर्म की सच्ची उदारता का एक नमूना! इसी प्रकरण में जाति मद न करने की शिक्षा देते हुये स्पष्ट लिखा है कि—

चाण्डालोऽपि व्रतोपेतः पूजितः देवतादिभिः ।
तस्मादन्यैर्न विप्राद्यैर्जातिगर्वो विधीयते ॥३०॥

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अर्थात्--व्रतों से युक्त चाण्डाल भी देवों द्वारा पूजा गया इस लिये ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्यों को अपनी जाति का गर्व नहीं करना चाहिये।

यहाँ पर जातिमद का कैसा सुन्दर निराकरण किया गया है! जैनाचार्यों ने नीच ऊँच का भेद मिटाकर, जाति पांति का पचड़ा तोड़ कर और वर्ण भेद को महत्व न देकर स्पष्ट रूप से गुणों को ही कल्याणकारी बताया है। अमितगति आचार्य ने इसी बात को इन शब्दों में लिखा है कि--

शीलवन्तो गताः स्वर्गे नीचजातिभवा अपि।
कुलीना नरकं प्राप्ताः शीलसंयमनाशिनः॥

अर्थात्—जिन्हें नीच जाति में उत्पन्न हुआ कहा जाता है वे शील धर्म को धारण करके स्वर्ग गये हैं और जिन के लिये उच्च कुलीन होने का मद किया जाता है ऐसे दुराचारी मनुष्य नरक गये हैं।

इस प्रकार के उद्धरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि जितनी उदारता, जितना वात्सल्य और जितना अधिकार जैनधर्म ने ऊंच नीच सभी मनुष्यों को दिया है उतना अन्य धर्मों में नहीं हो सकता। जैनधर्म में हो यह विशेषता है कि प्रत्येक व्यक्ति नर से नारायण हो सकता है। मनुष्य की बात तो दूर रही मगर भगवान समन्तभद्र के कथनानुसार तो—

"श्वाऽपि देवोऽपि देवः श्वा जायते धर्मकिल्विषात्"

अर्थात्—धर्म धारण करके कुत्ता भी देव हो सकता है और पाप के कारण देव भी कुत्ता हो जाता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

उच्च और नीचों में समभाव।

इसी प्रकार जैनाचार्यों ने पद पद पर स्पष्ट उपदेश दिया है कि प्रत्येक जिज्ञासुको धर्म मार्ग बतलाओ, उसे दुष्कर्म छोड़ने का उपदेश दो और यदि वह सच्चे रास्ते पर आ जावे तो उसके साथ बन्धु सम व्यवहार करो। सच बात तो यह है कि ऊँचों को ऊँच नहीं बनाया जाता, वह तो स्वयं ऊँच हैं ही। मगर जो भ्रष्ट हैं, पद च्युत हैं, पतित हैं, उन्हें जो उच्च पद पर स्थित करदे वही उदार एवं सच्चा धर्म है। यह खूबी इस पतित पावन जैनधर्म में है। इस संबंध में जैनाचार्यों ने कई स्थानों पर स्पष्ट विवेचन किया है। पंचाध्यायीकार ने स्थितिकरण का विवेचन करते हुये लिखा है कि—

सुस्थितीकरणं नाम परेषां सदनुग्रहात्।
भ्रष्टानां स्वपदात्तत्र स्थापनं तत्पदे पुनः ॥८०७॥

अर्थात्—निज पद से भ्रष्ट हुये लोगों को अनुग्रह पूर्वक उसी पद में पुनः स्थित कर देना ही स्थितिकरण अंग है।

इस से यह सिद्ध है कि चाहे जिस प्रकार से भ्रष्ट या पतित हुये व्यक्तिको पुनः शुद्ध कर लेना चाहिये और उसे फिर से अपने उच्च पद पर स्थित कर देना चाहिये। यही धर्म का वास्तविक अंग है। निर्विचिकित्सा अंग का वर्णन करते हुये भी इसी प्रकार उदारतापूर्ण कथन किया गया है। यथा—

दुर्दैवाद्दुःखिते पुंसि तीव्रासातादृणास्पदे।
यन्नादयापरं चेतः स्मृतो निर्विचिकित्सकः ॥५८३॥

अर्थात्—जो पुरुष दुर्दैव के कारण दुखी है और तीव्र असाता के कारण घृणा का स्थान बन गया है उसके प्रति अदयापूर्ण चित्त का न होना ही निर्विचिकित्सा है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

बड़े ही खेद का विषय है कि हम आज सम्यक्त के इस प्रधान अंग को भूल गये हैं और अभिमान के वशीभूत हो कर अपने को ही सर्व श्रेष्ठ समझते हैं। तथा दीन दरिद्री और दुखियों को नित्य ठुकरा कर जाति मद में मत्त रहते हैं। ऐसे अभिमानियों का मस्तक नीचा करनेके लिये पंचाध्यायीकार ने स्पष्ट लिखा है कि—

नैतत्तन्मनस्यज्ञानमस्म्यहं सम्पदां पदम्।
नासावस्मत्समो दीनो वराको विपदां पदम् ॥५८४॥

अर्थात्—मन में इस प्रकार का अज्ञान नहीं होना चाहिये कि मैं तो श्रीमान् हूँ, बड़ा हूं, अतः यह विपत्तियोंका मारा दीनदरिद्री हमारे समान नहीं हो सकता है। प्रत्युत प्रत्येक दीन हीन व्यक्ति के प्रति समानता का व्यवहार रखना चाहिये। जो व्यक्ति जाति मद या धन मद में मत्त होकर अपने को बड़ा मानता है वह मूर्ख है, अज्ञानी है। लेकिन जिसे मनुष्य तो क्या प्राणीमात्र सदृश मालूम हों वही सम्यग्दृष्टि है, वही ज्ञानी है, वही मान्य है, वही उच्च है, वही विद्वान् है, वही विवेका है और वही सच्चा पण्डित है। मनुष्यों की तो बात क्या किन्तु त्रस स्थावर प्राणीमात्र के प्रति सम भाव रखने का पंचाध्यायीकार ने उपदेश दिया है। यथा—

प्रत्युत ज्ञानमेवैतत्तत्र कर्मविपाकजाः।
प्राणिनः सदृशाः सर्वे त्रसस्थावरयोनयः ॥५८५॥

अर्थात्—दीन हीन प्राणियों के प्रति घृणा नहीं करना चाहिये प्रत्युत ऐसा विचार करना चाहिये कि कर्मों के मारे यह जीव त्रस और स्थावर योनि में उत्पन्न हुये हैं, लेकिन हैं सब समान ही।

तात्पर्य यह है कि नीच ऊँच का भेदभाव रखने वाले को महा अज्ञानी बताया है और प्राणीमात्र पर सम भाव रखने वाले को सम्यग्दृष्टि और सच्चा ज्ञानी कहा है। इन बातों पर हमें विचार

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

करने की आवश्यकता है। जैनधर्म की उदारता को हमें अब कार्य रूप में परिणत करना चाहिये। एक सच्चे जैनी के हृदय में न तो जाति मद हो सकता है, न ऐश्वर्य का अभिमान हो सकता है और न पापी या पतितों के प्रति घृणा ही हो सकती है। प्रत्युत वह तो उन्हें पवित्र बनाकर अपने आसन पर बिठायगा और जैनधर्म की उदारता को जगत में व्याप्त करने का प्रयत्न करेगा। खेद है कि भगवान महावीर स्वामी ने जिस वर्ण भेद और जाति मद को चकनाचूर करके धर्म का प्रकाश किया था, उन्हीं महावीर स्वामी के अनुयायी आज उसी जाति मद को पुष्ट कर रहे हैं।

जाति भेद का आधार आचरण पर है।

ढाई हजार वर्ष पूर्व जब लोग जाति मद में मत्त होकर मन माने अत्याचार कर रहे थे और मात्र ब्राह्मण ही अपने को धर्माधिकारी मान बैठे थे तब भगवान् महावीर स्वामी ने अपने दिव्योपदेश द्वारा जाति मूढता जनता में से निकाल दी थी और तमाम वर्ण एवं जातियों को धर्म धारण करने का समानाधिकारी घोषित किया था। यही कारण है कि स्व० लोकमान्य बालगंगाधर तिलक ने सच्चे हृदय से यह शब्द प्रगट किये थे कि—

"ब्राह्मणधर्म में एक त्रुटि यह थी कि चारों वर्णों अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्रों को समानाधिकार प्राप्त नहीं थे। यज्ञ यागादिक कर्म केवल ब्राह्मण ही करते थे। क्षत्रिय और वैश्यों को यह अधिकार प्राप्त नहीं था। और शूद्र विचारे तो ऐसे बहुत विषयों में अभागे थे। जैनधर्म ने इस त्रुटि को भी पूर्ण किया है।" इत्यादि।

इसमें कोई सन्देह नहीं कि जैनधर्म ने महान् अधम से अधम

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

और पतित से पतित शूद्र कहलाने वाले मनुष्यों को उस समय अपनाया था जब कि ब्राह्मण जाति उनके साथ पशु तुल्य ही नहीं किन्तु इससे भी अधम व्यवहार करती थी। जैनधर्म का दावा है कि घोर पापी से पापी या अधम नीच कहा जाने वाला व्यक्ति जैन धर्म की शरण लेकर निष्पाप और उच्च हो सकता है। यथा—

महापापप्रकर्ताऽपि प्राणी श्रीजैनधर्मतः।
भवेत् त्रैलोक्यसंपूज्यो धर्मात्किं भो परं शुभम्।

अर्थात्—घोर पाप को करने वाला प्राणी भी जैन धर्म धारण करने से त्रैलोक्य पूज्य हो सकता है।

जैनधर्म की उदारता इसी बात से स्पष्ट है कि इसको मनुष्य, देव, तिर्यञ्च और नारकी सभी धारण करके अपना कल्याण कर सकते हैं। जैनधर्म पाप का विरोधी है पापी का नहीं। यदि वह पापी का भी विरोध करने लगे, उनसे घृणा करने लग जावे तो फिर कोई भी अधम पर्याय वाला उच्च पर्याय को नहीं पा सकेगा और शुभाशुभ कर्मों की तमाम व्यवस्था ही बिगड़ जायगी। कथा ग्रन्थों से पता लगेगा कि जैनधर्म ने नीचातिनीच पापात्माओं को पवित्र करके परमपदपर पहुंचाया है।

कपिल ब्राह्मण ने गुरुदत्त मुनि को आग लगाकर जला डाला था, फिर भी वह पापी अपने पापों का पश्चात्ताप करके स्वयं मुनि होगया था। ज्येष्ठा आर्यिका ने एक मुनि से शील भ्रष्ट होकर पुत्र प्रसव किया था, फिर भी वह पुनः शुद्ध होकर आर्यिका होगई थी और स्वर्ग गई। राजा मधु ने अपने माण्डलिक राजा की स्त्री को अपने यहां बलात्कार से रख लिया था और उससे विषय भोग करता था, फिर भी वह दोनों मुनि दान देते थे और अन्त में दोनों

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

ही दीक्षा लेकर अच्युत स्वर्ग में गये। शिवभूति ब्राह्मण की पुत्री देववती के साथ शम्भू ने व्यभिचार किया, बाद में वह भ्रष्ट देववती विरक्त होकर हरिकान्ता नामक आर्यिका के पास गई और दीक्षा लेकर स्वर्ग को गई। वेश्यालंपटी अंजन चोर तो उसी भव से मोक्ष जाकर जैनियों का भगवान बन गया था। मांस भक्षी मृगध्वज ने मुनि दीक्षा ले ली और वह भी कर्म काटकर परमात्मा बन गया। मनुष्य भक्षी सौदास राजा मुनि होकर उसी भव से मोक्ष गया। इत्यादि सैकडों उदाहरण मौजूद हैं। जिनसे सिद्ध होता है कि जैन धर्म पतित पावन है। यह पापियों को परमात्मा बना देने वाला है और सबसे अधिक उदार है।

जैन शास्त्रों में धर्मधारण करने का ठेका अमुक वर्ण या जाति को नहीं दिया गया है किन्तु मन वचन काय से सभी प्राणी धर्म धारण करने के अधिकारी बताये गये हैं। यथा—

"मनोवाक्कायधर्माय मताः सर्वेऽपि जन्तवः"

—श्री सोमदेवसूरिः।

ऐसी ऐसी आज्ञायें, प्रमाण और उपदेश जैन शास्त्रों में भरे पड़े हैं; फिर भी संकुचित दृष्टि वाले जाति मद में मत्त होकर इन बातों की परवाह न करके अपने को ही सर्वोच्च समझ कर दूसरों के कल्याण में जबरदस्त बाधा डाला करते हैं। ऐसे व्यक्ति जैन धर्म की उदारता को नष्ट करके स्वयं तो पाप बन्ध करते ही हैं साथ ही पतितों के उद्धार में, अवनतों की उन्नति में और पदच्युतों के उत्थान में बाधक होकर घोर अत्याचार करते हैं।

उनको मात्र भय इतना ही रहता है कि यदि नीच कहलाने वाला व्यक्ति भी जैनधर्म धारण कर लेगा तो फिर हम में और उसमें क्या भेद रहेगा! मगर उन्हें इतना ज्ञान नहीं है कि भेद

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat　www.umaragyanbhandar.com

होना ही चाहिये इसकी क्या जरूरत है ? जिस जाति को आप नीच समझते हैं उसमें क्या सभी लोग पापी, अन्यायी, अत्याचारी या दुराचारी होते हैं ? अथवा जिसे आप उच्च समझ बैठे हैं उस जाति में क्या सभी लोग धर्मात्मा और सदाचारी के अवतार होते हैं ? यदि ऐसा नहीं है तो फिर आपको किसी वर्ण को ऊंच या नीच कहने का क्या अधिकार है ?

हां, यदि भेद व्यवस्था करना ही हो तो जो दुराचारी है उसे नीच और जो सदाचारी है उसे ऊंच कहना चाहिये। श्रीरविषेणाचार्य ने इसी बात को पद्मपुराण में इस प्रकार लिखा है कि—

चातुर्वर्ण्यं यथान्यच्च चाण्डालादिविशेषणं ।
सर्वमाचारभेदेन प्रसिद्धं भुवने गतम् ॥

अर्थात्—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र या चाण्डालादिक का तमाम विभाग आचरण के भेद से ही लोक में प्रसिद्ध हुआ है। इसी बात का समर्थन और भी स्पष्ट शब्दों में आचार्य श्री अमितगति महाराज ने इस प्रकार किया है कि—

आचारमात्रभेदेन जातीनां भेदकल्पनम् ।
न जातिर्ब्राह्मणीयास्ति नियता क्वापि तात्विकी ॥
गुणैः संपद्यते जातिर्गुणध्वंसैर्विपद्यते ॥

अर्थात्—शुभ और अशुभ आचरण के भेद से ही जातियों में भेद की कल्पना की गई है, लेकिन ब्राह्मणादिक जाति कोई कहीं पर निश्चित, वास्तविक या स्थाई नहीं है। कारण कि गुणों के होने से ही उच्च जाति होती है और गुणों के नाश होने से उस जाति का भी नाश होजाता है।

पाठको ! इससे अधिक स्पष्ट, सुन्दर तथा उदार कथन और

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

क्या हो सकता है? अमितगति आचार्यने उक्त कथन में तो जातियों को कपूर की तरह उड़ा दिया है। तथा यह स्पष्ट घोषित किया है कि जातियाँ काल्पनिक हैं-वास्तविक नहीं! उनका विभाग शुभ और अशुभ आचरण पर आधार रखता है न कि जन्म पर। तथा कोई भी जाति स्थायी नहीं है। यदि कोई गुणी है तो उसकी जाति उच्च है और यदि कोई दुर्गुणी है तो उसकी जाति नष्ट होकर नीच हो जाती है। इससे सिद्ध है कि नीच से नीच जाति में उत्पन्न हुआ व्यक्ति शुद्ध होकर जैन धर्म धारण कर सकता है और वह उतना ही पवित्र हो सकता है जितना कि जन्म से धर्म का ठेकेदार मानेजाने वाला एक जैन होता है। प्रत्येक व्यक्ति जैनी बन कर आत्मकल्याण कर सकता है। जब कि अन्य धर्मों में जाति वर्ण या समूह विशेष का पक्षपात है तब जैनधर्म इससे बिलकुल ही अछूता है। यहां पर किसी जाति विशेष के प्रति राग द्वेष नहीं है, किन्तु मात्र आचरण पर ही दृष्टि रक्खी गई है। जो आज ऊँचा है वही अनार्यों के आचरण करनेसे नीच भी बन जाता है। यथा—

"अनार्यमाचरन् किंचिज्जायते नीचगोचरः"

—रविषेणाचार्य।

जैन समाज का कर्तव्य है कि वह इन आचार्य वाक्यों पर विचार करे, जैन धर्म की उदारता को समझे और दूसरों को निःसंकोच जैन धर्म में दीक्षित करके अपने समान बनाले। कोई भी व्यक्ति जब पतित पावन जैन धर्म को धारण करले तब उसको तमाम धार्मिक एवं सामाजिक अधिकार देना चाहिये और उसे अपने भाई से कम नहीं समझना चाहिये। यथा—

विप्रक्षत्रियविट्शूद्राः प्रोक्ताः क्रियाविशेषतः।
जैनधर्मे पराः शक्तास्ते सर्वे बांधवोपमाः॥

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अर्थात्—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तो आचरण के भेद से कल्पित किये गये हैं। किन्तु जब वे जैन धर्म धारण कर लेते हैं तब सभी को अपने भाई के समान ही समझना चाहिये।

इसीसे मालूम होगा कि जैनधर्म कितना उदार है और उसमें आते ही प्रत्येक व्यक्ति के साथ किस प्रकार से प्रेम व्यवहार करने का उपदेश दिया गया है। किन्तु जैनधर्म की इस महान् उदारता को जानते हुये भी जिनकी दुर्बुद्धि में जाति मद का विष भरा हुआ है उनसे क्या कहा जाय ? अन्यथा जैनधर्म तो इतना उदार है कि कोई भी मनुष्य जैन होकर तमाम धार्मिक एवं सामाजिक अधिकारों को प्राप्त कर सकता है।

वर्ण परिवर्तन।

कुछ लोगोंकी ऐसी धारणा है कि जाति भले बदल जाय मगर वर्ण परिवर्तन नहीं हो सकता है, किन्तु उनकी यह भूल है कारण कि वर्ण परिवर्तन हुये बिना वर्ण की उत्पत्ति एव उसकी व्यवस्था भी नहीं हो सकती थी। जिस ब्राह्मण वर्ण को सर्वोच्च माना गया है उसकी उत्पत्ति पर तनिक विचार करिये तो मालूम होगा कि वह तीनों वर्णों के व्यक्तियों में से उत्पन्न हुआ है। आदिपुराण में लिखा है कि जब भरत राजा ने ब्राह्मण वर्ण स्थापित करने का विचार किया तब राजाओं को आज्ञा दी थी कि:—

सदाचारैर्निजैरिष्टैरनुजीविभिरन्विताः।
अद्यास्मदुत्सवे यूयमायातेति पृथक् पृथक्॥ पर्व ३८-१०॥

अर्थात्—आप लोग अपने सदाचारी इष्ट मित्रों सहित तथा नौकर चाकरों को लेकर आज हमारे उत्सव में आओ। इस प्रकार भरत चक्रवर्तीने राजा प्रजा और नौकर चाकरों को बुलाया था, उन

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

में क्षत्री वैश्य और शूद्र सभी वर्ण के लोग थे। उनमें से जो लोग हरे अंकुरों को मर्दन करते हुये महल में पहुंच गये उन्हें तो चक्रवर्ती ने निकाल दिया और जो लोग हरे घास को मर्दन न करके बाहर ही खड़े रहे या लौट कर वापिस जाने लगे उन्हें ब्राह्मण बना दिया। इस प्रकार तीन वर्णों में से विवेकी और दयालु लोगों को ब्राह्मण वर्ण में स्थापित किया गया।

अब यहां विचारणीय बात यह है कि जब शूद्रों में से भी ब्राह्मण बनाये गये, वैश्यों में से भी बनाये गये और क्षत्रियों में से भी ब्राह्मण तैयार किये गये तब वर्ण अपरिवर्तनीय कैसे होसकता है ? दूसरी बात यह है कि तीन वर्णों में से छांट कर एक चौथा वर्ण तो पुरुषों का तैयार होगया, मगर उन नये ब्राह्मणों की स्त्रियां कैसे ब्राह्मण हुई होंगी ? कारण कि वे तो महाराजा भरत द्वारा आमंत्रित की नहीं गई थी क्यों कि उसमें तो राजा लोग और उनके नौकर चाकर आदि ही आये थे। उनमें सब पुरुष ही थे। यह बात इस कथन से और भी पुष्ट हो जाती है कि उन सब ब्राह्मणों को यज्ञोपवीत पहनाया गया था। यथा--

तेषां कृतानि चिह्नानि सूत्रैः पद्माह्वयान्निधेः।
उपात्तैर्ब्रह्मसूत्राद्यैरेकाद्येकादशान्तकैः ॥पर्व ३८-२१॥

अर्थात्- पद्म नामक निधि से ब्रह्म सूत्र लेकर एक से ग्यारह तक (प्रतिमानुसार) उनके चिन्ह किये। अर्थात् उन्हें यज्ञोपवीत पहनाया।

यह बात तो सिद्ध है कि यज्ञोपवीत पुरुषों को ही पहनाया जाता है। तब उन ब्राह्मणों के लिये स्त्रियां कहां से आई होंगी ? कहना होगा कि वही पूर्व की पत्नियां जो क्षत्रिय वैश्य या शूद्रा होंगी ब्राह्मणी बना ली गई होंगी। तब उनका भी वर्ण परिवर्तित

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

होजाना निश्चत है। शास्त्रों में भी वर्ण लाभ करनेवाले को अपनी पूर्वपत्नी के साथ पुनर्विवाह करनेका विधान पाया जाता है। यथा-

" पुनर्विवाहसंस्कारः पूर्वः सर्वोऽस्य संमतः "

आदिपुराण पर्व ३९-६०॥

इतना ही नहीं किन्तु पर्व ३९ श्लोक ६१ से ७० तक के कथन से स्पष्ट मालूम होता है कि जैनी ब्राह्मणों को अन्य मिथ्यादृष्टियों के साथ विवाह संबंध करना पड़ता था, बाद में वह ब्राह्मण वर्ण में ही मिलजाते थे। इस प्रकार वर्णों का परिवर्तित होना स्वाभाविक सा होजाता है। अतः वर्ण कोई स्थाई वस्तु नहीं है यह बात सिद्ध हो जाती है। आदिपुराण में वर्ण परिवर्तन के विषय में अक्षत्रियों को क्षत्रिय होने बाबत इस प्रकार लिखा है कि—

"अक्षत्रियाश्च वृत्तस्थाः क्षत्रिया एव दीक्षिताः"।

इस प्रकार वर्ण परिवर्तन की उदारता बतला कर जैनधर्म ने अपना मार्ग बहुत ही सरल एवं सर्व कल्याणकारी करदिया है। यदि इसी उदार एवं धार्मिक मार्ग का अवलम्बन किया जाय तो जैन समाज की बहुत कुछ उन्नति हो सकती है और अनेक मनुष्य जैन बनकर अपना कल्याण कर सकते हैं। किसी वर्ण या जाति को स्थाई या गतानुगतिक मान लेना जैनधर्म की उदारता का खून करना है। यहाँ तो कुलाचार को छोड़नेसे कुल भी नष्ट हो जाता है। यथा—

कुलावधिः कुलाचाररक्षणं स्यात् द्विजन्मनः।
तस्मिन्न सत्यसौ नष्टक्रियोऽन्यकुलतां व्रजेत् ॥१८१॥

—आदिपुराण पर्व ४०॥

अर्थ—ब्राह्मणों को अपने कुल की मर्यादा और कुल के

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आचारों की रक्षा करना चाहिये। यदि कुलाचार-विचारों की रक्षा नहीं की जाय तो वह व्यक्ति अपने कुल से नष्ट होकर दूसरे कुल वाला हो जायगा।

तात्पर्य यह है कि जाति, कुल, वर्ण आदि सब क्रियाओं पर निर्भर हैं। इनके बिगड़ने सुधरनेपर इनका परिवर्तन होजाता है।

गोत्र परिवर्तन।

दुःख तो इस बात का है कि आगम और शास्त्रों की दुहाई देने वाले कितने ही लोग वर्ण को तो अपरिवर्तनीय मानते ही हैं और साथही गोत्रकी कल्पनाको भी स्थाई एवं जन्मगत मानते हैं किन्तु जैन शास्त्रों ने वर्ण और गोत्र को परिवर्तन होने वाला बता कर गुणों की प्रतिष्ठा की है तथा अपनी उदारता का द्वार प्राणी मात्र के लिये खुला करदिया है। दूसरी बात यह है कि गोत्र कर्म किसी के अधिकारों में बाधक नहीं हो सकता है। इस संबंध में यहाँ कुछ विशेष विचार करने की जरूरत है।

सिद्धान्त शास्त्रों में किसी कर्म प्रकृति का अन्य प्रकृति रूप होने को संक्रमण कहा है। उसके ५ भेद होते हैं—उद्वेलन, विध्यात, अधः प्रवृत्त, गुण और सर्व संक्रमण। इनमें से नीच गोत्र के दो संक्रमण हो सकते हैं। यथा—

सत्तण्हं गुणसंकममधापवत्तो य दुक्खमसुहगदी।
संहदि संठाणदसं णीचापुण्ण थिरछक्कं च ॥४२२॥
वीसण्हं विज्झादं अधापवत्तो गुणो य मिच्छत्ते॥४२३॥कर्मकांड

असातावेदनीय, अशुभगति, ५ संस्थान, ५ संहनन, नीच गोत्र अपर्याप्त, अस्थिरादि ६ इन २० प्रकृतियों के विध्यात, अधःप्रवृत्त, और गुण संक्रमण होते हैं। अतः जिस प्रकार असाता वेदनीय

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

का साताके रूपमें संक्रमण (परिवर्तन) हो सकता है उसी प्रकार से नीचगोत्र का ऊँच गोत्र के रूप में भी परिवर्तन (संक्रमण) होना सिद्धान्त शास्त्र से सिद्ध है। अतः किसी को जन्म से मरने तक नीचगोत्री ही मानना दयनीय अज्ञान है। हमारे सिद्धान्त शास्त्र पुकार २ कर कहते हैं कि कोई भी नीच से नीच या अधम से अधम व्यक्ति ऊंच पद पर पहुंच सकता है और वह पावन बन जाता है। यह बात तो सभी जानते हैं कि जो आज लोकदृष्टि में नीच था वही कल लोकमान्य, प्रतिष्ठित एवं महान होजाता है। भगवान अकलंक देव ने राजवार्तिक में ऊंच नीच गोत्र की इस प्रकार व्याख्या की है—

यस्योदयात् लोकपूजितेषु कुलेषु जन्म तदुच्चैर्गोत्रम् ॥
गर्हितेषु यत्कृतं तन्नीचैर्गोत्रम् ॥
गर्हितेषु दरिद्राऽप्रतिज्ञातदुःखाः कुलेषु यत्कृतं प्राणिनां जन्म तन्नीचैर्गोत्रं प्रयेतव्यम् ॥

ऊंच नीच गोत्रकी इस व्याख्या से मालूम होता है कि जो लोकपूजित-प्रतिष्ठित कुलों में जन्म लेते हैं वे उच्चगोत्री हैं और जो गर्हित अर्थात दुखी दरिद्री कुल में उत्पन्न होते हैं वे नीच गोत्री हैं। यहां पर किसी भी वर्ण की अपेक्षा नहीं रखी गई है। ब्राह्मण होकर भी यदि वह निंद्य एवं दीन दुखी कुल में है तो नीच गोत्र वाला है और यदि शूद्र होकर भी राजकुल में उत्पन्न हुआ है अथवा अपने शुभ कृत्यों से प्रतिष्ठित है तो वह उच्च गोत्र वाला है।

वर्ण के साथ गोत्र का कोई भी संबंध नहीं है। कारण कि गोत्रकर्म की व्यवस्था तो प्राणीमात्र में सर्वत्र है, किन्तु वर्ण-व्यवस्था तो भारतवर्ष में ही पाई जाती है। वर्णव्यवस्था मनुष्यों

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

को योग्यतानुसार श्रेणी विभाग है जब कि गोत्र का आधार कर्म पर है। अतः गोत्रकर्म कुल की अथवा व्यक्ति की प्रतिष्ठा अथवा अप्रतिष्ठा के अनुसार उच्च और नीच गोत्री होसकता है। इसप्रकार गोत्र कर्म की शास्त्रीय व्याख्या सिद्ध होने पर जैन धर्मकी उदारता स्पष्ट मालूम होजाती है। ऐसा होने पर ही जैन धर्म पतित पावन या दीनोद्धारक सिद्ध होता है।

पतितों का उद्धार।

जैन धर्म की उदारता पर ज्यों २ गहरा विचार किया जाता है त्यों त्यों उसके प्रति श्रद्धा बढ़ती जाती है। जैनधर्म ने महान पातकियों को पवित्र किया है, दुराचारियों को सन्मार्ग पर लगाया है, दीनों को उन्नत किया है और पतित का उद्धार करके अपना जगद्बन्धुत्व सिद्ध किया है। यह बात इतने मात्रसे सिद्ध होजाती है कि जैनधर्म में वर्ण और गोत्र को कोई स्थाई, अटल या जन्मगत स्थान नहीं है। जिन्हें जातिका कोई अभिमान है उनके लिये जैन ग्रंथकारों ने इस प्रकार स्पष्ट शब्दों में लिखकर उस जाति अभिमान को चूर चूर कर दिया है कि–

न विप्राविप्रयोरस्ति सर्वथा शुद्धशीलता।
कालेननादिना गोत्रे स्खलनं क्व न जायते॥
संयमो नियमः शीलं तपो दानं दमो दया।
विद्यन्ते तात्विका यस्यां सा जातिर्महती मता॥

अर्थात्——ब्राह्मण और अब्राह्मण की सर्वथा शुद्धि का दावा नहीं किया जासकता है, कारण कि इस अनादि काल में न जाने किसके कुल या गोत्र में कब पतन होगया होगा! इस लिये वास्तव में उच्च जाति तो वही है जिसमें संयम, नियम, शील, तप, दान,

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

दमन और दया पाई जाती हो।

इसी प्रकार और भी अनेक ग्रंथों में वर्ण और जाति कल्पना की धज्जी उडाई गई है। प्रमेय कमल मार्तण्ड में तो इतनी खूबी से जाति कल्पना का खण्डन किया गया है कि अच्छों अच्छों की बोलती बन्द होजाती है। इससे सिद्ध होता है कि जैनधर्म में जाति की अपेक्षा गुणों के लिये विशेष स्थान है। महा नीच कहा जाने वाला व्यक्ति अपने गुणों से उच्च हो जाता है, भयंकर दुराचारी प्रायश्चित्त लेकर पवित्र हो जाता है और कैसा भी पतित व्यक्ति पावन बन सकता है। इस संबन्ध में अनेक उदाहरण पहिले दो प्रकरणोंमें दिये गये हैं। उनके अतिरिक्त और भी प्रमाण देखिये।

स्वामी कार्तिकेय महाराज के जीवन चरित्र पर यदि दृष्टिपात किया जावे तो मालूम होगा कि एक व्यभिचारजात व्यक्ति भी किस प्रकार से परम पूज्य और जैनियों का गुरू हो सकता है। उस कथा का भाव यह है कि—अग्नि नामक राजा ने अपनी कृत्तिका नामक पुत्री से व्यभिचार किया और उससे कार्तिकेय नामक पुत्र उत्पन्न हुआ। यथा—

स्वपुत्री कृत्तिका नाम्नी परिणीता स्वयं हठात्।
कैश्चिद्दिनैस्ततस्तस्यां कार्तिकेयो सुतोऽभवत्॥

इसके बाद जब व्यभिचारजात कार्तिकेय बड़ा हुआ और पिता कहो या नाना का जब यह अत्याचार ज्ञात हुआ तब विरक्त होकर एक मुनिराज के पास जाकर जैन मुनि होगया। यथा–

नत्वा मुनीन् महाभक्त्या दीक्षामादाय स्वर्गदाम्।
मुनिर्जातो जिनेन्द्रोक्तसप्ततत्वविचक्षणः॥

–आराधना कथाकोश की ६६ वीं कथा।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अर्थात्–वह कार्तिकेय भक्तिपूर्वक मुनिराज को नमस्कार करके स्वर्गदायी दीक्षा को लेकर जिनेन्द्रोक्त सप्ततत्त्वों के ज्ञाता मुनि होगये।

इस प्रकार एक व्यभिचारजात या आज कल के शब्दों में दस्सा या बिनैकावार व्यक्ति का मुनि होजाना जैन धर्म की उदारता का ज्वलन्त प्रमाण है। वह मुनि भी साधारण नहीं किन्तु उद्भट विद्वान और अनेक ग्रन्थों के रचयिता हुये हैं जिन्हें सारी जैन-समाज बड़े गौरव के साथ आज भी भक्तिपर्वक नमस्कार करती है। मगर दुःख का विषय है कि जाति मद में मत्त होकर जैनसमाज अपने उदार धर्म को भूली हुई है और अपने हज़ारों भाई बहनों को अपमानित करके उन्हें विनैकावार या दस्सा बनाकर सदा के लिये मक्खी की तरह निकाल कर फैंक देती है। वर्तमान जैन समाज का कर्तव्य है कि वह स्वामी कार्तिकेय की कथा से कुछ बोधपाठ लेवे और जैनधर्म की उदारता का उपयोग करे। कभी किसी कारण से पतित हुये व्यक्ति को या उसकी सन्तान को सदा के लिये धर्म का अनधिकारी बना देना घोर पाप है।

भावी संतानको दूषित न मानकर उसी दोषी व्यक्ति को पुनः शुद्ध करलेने बाबत जिनसेनाचार्य ने इस प्रकार स्पष्ट कथन किया है–

कुतश्चित् कारणाद्यस्य कुलं संप्राप्तदूषणं।
सोऽपि राजादिसम्मत्या शोधयेत् स्वं यदा कुलम्॥ १६८
तदास्योपनयार्हत्वं पुत्रपौत्रादिसंततौ।
न निषिद्धं हि दीक्षार्हे कुले चेदस्य पूर्वजाः॥ १६९

आदि पुराण पर्व॥ ४०॥

अर्थ–यदि किसी कारण से किसी के कुलमें कोई दूषण लग जाय तो वह राजादिकी सम्मतिसे अपने कुलको जब शुद्ध करलेता

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

है तब उसे फिरसे यज्ञोपवीतादि लेने का अधिकार हो जाता है। यदि उसके पूर्वज दीक्षा योग्य कुल में उत्पन्न हुवे हों तो उसके पुत्र पौत्रादि सन्तानको यज्ञोपवीतादि लेनेका कहीं भी निषेध नहीं है।

तात्पर्य यह है कि किसी की भी सन्तान दूषित नहीं कही जा सकती, इतना ही नहीं किन्तु प्रत्येक दूषित व्यक्ति शुद्ध होकर दीक्षा योग्य होजाता है।

कुछ समय पूर्व इटावा में दिगम्बर मुनि **श्री सूर्यसागर जी महाराज** ने स्पष्ट शब्दों में कहा था कि—"जीव मात्रको जिनेन्द्र भगवान की पूजा भक्ति करने का अधिकार है। जब कि मैंढक जैसे तिर्यंच पूजा कर सकते हैं तब मनुष्यों की तो बात ही क्या है! याद रक्खो कि धर्म किसी की बपौती जायदाद नहीं है, जैनधर्म तो प्राणी मात्र का धर्म है, पतित पावन है। वीतराग भगवान पूर्ण पवित्र होते हैं, कोई त्रिकाल में भी उन्हें अपवित्र नहीं बना सकता। कैसा भी कोई पापी या अपराधी हो उसे कड़ी से कड़ी सजा दो परन्तु धर्मस्थान का द्वार बन्द मत करो। यदि धर्मस्थान ही बंद होगया तो उसका उद्धार कैसे होगा? ऐसे परम पवित्र-पतित पावन धर्म को पाकर तुम लोगोंने उसकी कैसी दुर्गति करडाली है शास्त्रों में तो पतितों को पावन करनेवाले अनेक उदाहरण मिलते हैं, फिर भी पता नहीं कि जैनधर्म के ज्ञाता बनने वाले कुछ जैन विद्वान उसका विरोध क्यों करते हैं? परम पवित्र, पतित पावन और उदार जैनधर्म के विद्वान संकीर्णता का समर्थन करें यह बड़े ही आश्चर्य की बात है। कहां तो हमारा धर्म पतितों को पावन करने वाला है और कहां आज लोग पतितों के संसर्ग से धर्म को भी पतित हुआ मानने लगे हैं। यह बड़े खेद का विषय है!"

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

मुनि श्री सूर्यसागर जी महाराज का यह वक्तव्य जैनधर्म की उदारता और वर्तमान जैनों की संकुचित मनोवृत्ति को स्पष्ट सूचित करता है। लोगों ने स्वार्थ, कषाय, अज्ञान एवं दुराग्रह के वशीभूत होकर उदार जैन मार्ग को कंटकाकीर्ण, संकुचित एवं भ्रम पूर्ण बना डाला है। अन्यथा यहाँ तो महा पापियों का उसी भवमें उद्धार होगया है। देखिये एक धीमर(मच्छीमार) की लड़की उसी भव में क्षुल्लिका होकर स्वर्ग गई थी। यथा–

ततः समाधिगुप्तेन मुनीन्द्रेण प्रजल्पितं ।
धर्ममाकर्ण्य जैनेन्द्रं सुरेन्द्राद्यै समर्चितम् ॥ २४ ॥
संजाता क्षुल्लिका तत्र तपः कृत्वा स्वशक्तितः ।
मृत्वा स्वर्गं समासाद्य तस्मादागत्य भूतले ॥ २५ ॥

आराधना कथा कोश कथा ४५ ॥

अर्थात् मुनिश्री समाधि गुप्त के द्वारा निरूपित तथा देवों से पूज्य जिनधर्मका श्रवण करके 'काणा' नामकी धीमर (मच्छीमार) की लड़की क्षुल्लिका हो गई और यथा शक्ति तप कर के स्वर्ग को गई।

जहां मांस भक्षी शूद्र कन्या इस प्रकार से पवित्र होकर जैनों की पूज्य हो जाती है, वहां उस धर्म की उदारता के सम्बन्ध में और क्या कहा जाय? एक नहीं, ऐसे पतित पावन अनेक व्यक्तियों का चरित्र जैन शास्त्रोंमें भरा पड़ा है। उनसे उदारता की शिक्षा ग्रहण करना जैनों का कर्तव्य है।

यह खेद की बात है कि जिन बातों से हमें परहेज करना चाहिये उनकी ओर हमारा तनिक भी ध्यान नहीं है और जिनके विषय में धर्म शास्त्र एवं लोक शास्त्र खुली आज्ञा देते हैं या जिनके अनेक उदाहरण पूर्वाचार्य ग्रन्थों में लिख गये हैं उन पर ध्यान

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

नहीं दिया जाता है । प्रत्युत विरोध तक किया जाता है । क्या यह कम दुर्भाग्य की बात है ? हमारे धर्म शास्त्रों ने आचार शुद्ध होने वाले प्रत्येक वर्ण या जाति के व्यक्ति को शुद्ध माना है । यथा–

शूद्रोप्युपस्करावारवपुःशुद्धयास्तु तादृशः ।
जात्या हीनोऽपि कालादिलब्धौ ह्यात्मास्ति धर्म भाक् ॥

सागर धर्मामृत २–२२

अर्थात्— जो शूद्र भी है यदि उसका आसन वस्त्र आचार और शरीर शुद्ध है तो वह ब्राह्मणादि के समान है । तथा जाति से हीन (नीच) होकर भी कालादि लब्धि पाकर वह धर्मात्मा हो जाता है ।

यह कैसा स्पष्ट एवं उदारता मय कथन है ! एक महा शूद्र एवं नीच जाति का व्यक्ति अपने आचार विचार एवं रहन सहन को पवित्र करके ब्राह्मण के समान बन जाता है । ऐसी उदारता और कहां मिलेगी ? जैन धर्म तो गुणों की उपासना करना बतलाता है, उसे जन्म जात शरीर को कोई चिन्ता नहीं है। यथा-

"व्रत स्थमपि चाण्डालं तं देवा ब्राह्मणं विदुः ॥"

रविषेणाचार्य ।

अर्थात— चाण्डाल भी व्रत धारण करके ब्राह्मण हो सकता है । कहिये इतनी महान उदारता और कहां हो सकती है ? सच बात तो यह है कि—

जहां वर्ण मे सदाचार पर अधिक दिया जाता हो जोर ।
तर जाते हों निमिष मात्र में यमपालादिक अंजन चोर॥
जहां जाति का गर्व न होवे और न हो थोथा अभिमान ।
वही धर्म है मनुजमात्र को हो जिसमें अधिकार समान ॥

मनुष्य जाति को एक मान कर उसके प्रत्येक व्यक्ति को समान

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अधिकार देना ही धर्म की उदारता है। जो लोग मनुष्यों में भेद देखते हैं उनके लिये आचार्य लिखते हैं—

"नास्ति जाति कृतो भेदो मनुष्याणां गवाश्ववत्"

गुण भद्राचार्य।

अर्थात्— जिस प्रकार पशुओं में या तिर्यंचों में गाय और घोड़े आदि का भेद होता है उस प्रकार मनुष्यों में कोई जाति कृत भेद नहीं है। कारण कि "मनुष्य जातिरेकैव" मनुष्य जाति तो एक ही है। फिर भी जो लोग इन आचार्य वाक्यों की अवहेलना करके मनुष्यों को सैकड़ों नहीं हजारों जातियों में विभक्त करके उन्हें नीच ऊँच मान रहे हैं उनको क्या कहा जाय ?

याद रहे कि आगम के साथ ही साथ जमाना भी इस बात को बतला रहा है कि मनुष्य मात्र से बंधुत्वका नाता जोड़ो, उनसे प्रेम करो और कुमार्गपर जाते हुये भाइयोंको सन्मार्ग बताओ तथा उन्हें शुद्ध करके अपने हृदय से लगालो। यही मनुष्य का कर्तव्य है यही जीवन का उत्तम कार्य है और यही धर्म का प्रधान अंग है। भला मनुष्यों के उद्धार समान और दूसरा धर्म क्या होसकता है? जो मनुष्यों से घृणा करता है उसने न तो धर्म को पहिचाना है और न मनुष्यता को ?

वास्तव में जैन धर्म तो इतना उदार है कि जिसे कहीं भी शरण न मिले उसके लिये भी जैन धर्म का फाटक हमेशा खुला रहता है। जब एक मनुष्य दुराचारी होने से जाति बहिष्कृत और पतित किया जा सकता है तथा अधर्मात्मा करार दिया जा सकता है तब यह बात स्वयं सिद्ध है कि वही अथवा अन्य व्यक्ति सदाचारी होने से पुनः जाति में आ सकता है, पावन हो सकता है और धर्मात्मा बन सकता है। समझ में नहीं आता कि ऐसी

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सीधी सादी एवं युक्ति संगत बात क्यों समझ में नहीं आती ?

यदि आज कल के जैनियों की भांति महावीर स्वामी की भी संकुचित दृष्टि होती तो वे महा पापी, अत्याचारी, मांस लोलुपी, नर हत्या करने वाले निर्दयी मनुष्यों को इस पतित पावन जैनधर्म की शरण में कैसे आने देते ? तथा उन्हें उपदेश ही क्यों देते ? उनका हृदय तो विशाल था, वे सच्चे पतित पावन प्रभु थे, उनमें विश्व प्रेम था इसी लिये वे अपने शासन में सबको शरण देते थे। मगर समझ में नहीं आता कि महावीर स्वामी के अनुयायी आज उस उदार बुद्धि से क्यों काम नहीं लेते ?

भगवान् महावीर स्वामी का उपदेश प्रायः प्राकृत भाषा में पाया जाता है। इसका कारण यही है कि उस जमाने में नीच से नीच वर्ग की भी आम भाषा प्राकृत थी। उन सब को उपदेश देने के लिये ही साधारण बोलचाल की भाषा में हमारे धर्म ग्रन्थों की रचना हुई थी।

जो पतित पावन नहीं है वह धर्म नहीं है, जिसका उपदेश प्राणीमात्र के लिये नहीं है वह देव नहीं है, जिसका कथन सब के लिये नहीं है वह शास्त्र नहीं है, जो नीचों से घृणा करता है और उन्हें कल्याण मार्ग पर नहीं लगा सकता वह गुरु नहीं है। जैन धर्म में यह उदारता पाई जाती है इसी लिये वह सर्व श्रेष्ठ है। वर्तमान में जैनधर्म की इस उदारता का प्रत्यक्ष रूप में अमल कर दिखाने की जरूरत है।

शास्त्रीय दण्ड विधान।

किसी भी धर्म की उदारता का पता उस के प्रायश्चित्त या दण्ड विधान से भी लग सकता है। जैन शास्त्रों में दण्ड विधान बहुत ही उदार दृष्टि से वर्णित किया गया है। यह बात दूसरी है

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

कि हमारी समाज ने इस ओर बहुत दुर्लक्ष्य किया है; इसी लिये उसने हानि भी बहुत उठाई है। सभ्य संसार इस बात को पुकार पुकार कर कहता है कि अगर कोई अंधा पुरुष ऐसे मार्ग पर जा रहा हो कि जिस पर चल कर उसका आगे पतन हो जायगा, भयानक कुये में जा गिरेगा और लापता हो जायगा तो एक दयालु समझदार एवं विवेकी व्यक्ति का कर्तव्य होना चाहिये कि वह उस अंधे का हाथ पकड़ कर ठीक मार्ग पर लगादे, उसको भयानक गर्त से उबार ले और कदाचित वह उस महागर्त में पड़ भी गया हो तो एक सहृदयी व्यक्ति का कर्तव्य है कि जब तक उस अंधे की श्वास चल रही है, जब तक वह अन्तिम घड़ियाँ गिन रहा है तब तक भी उसे उभार कर उसकी रक्षा करले। बस, यही परम दया धर्म है, और यही एक मानवीय कर्तव्य है।

इसी प्रकार जब हमें यह अभिमान है कि हमारा जैनधर्म परम उदार है, सार्वधर्म है, परमोद्धारक मानवीय धर्म है तथा यही सच्ची दृष्टि से देखने वाला धर्म है तब हमारा कर्तव्य होना चाहिये कि जो कुमार्गरत हो रहे हैं, जो सत्यमार्ग को छोड़ बैठे हैं, तथा जो मिथ्यात्व, अन्याय और अभक्ष्य को सेवन करते हैं उन्हें उपदेश देकर सुमार्ग पर लगावें। जिस धर्म का हमें अभिमान है उस से दूसरों को भी लाभ उठाने देवें।

लेकिन जिनका यह भ्रम है कि अन्याय सेवन करने वाला, मांस मदिरा सेवी, मिथ्यात्वी एवं विधर्मी को अपना धर्म कैसे बताया जावे, उन्हें कैसे साधर्मी बनाया जावे, उनकी यह भारी भूल है। अरे! धर्म तो मिथ्यात्व, अन्याय और पापों से छुड़ाने वाला ही होता है। यदि धर्म में यह शक्ति न हो तो पापियों का उद्धार कैसे हो सकता है? और जो अधर्मियों को धर्म पथ नहीं बतला सकता वह धर्म ही कैसे कहा जा सकता है?

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

दुराचारियों का दुराचार छुड़ाकर उन्हें साधर्मी बनाने से धर्म व समाज लांछित नहीं होता है, किन्तु लांछित होता है तब जब कि उसमें दुराचारी और अन्यायी लोग अनेक पाप करते हुये भी मूँछों पर ताव देवें और धर्मात्मा बने बैठे रहें। विष के खाने से मृत्यु हो जाती है लेकिन उसी विष को शुद्ध करके सेवन करने से अनेक रोग दूर हो जाते हैं। प्रत्येक विवेकी व्यक्ति का हृदय इस बात की गवाही देगा कि अन्याय, अभक्ष्य, अनाचार और मिथ्यात्व का सेवन करनेवाले जैन से वह अजैन लाख दरजे अच्छा है जो इन बातों से परे है और अपने परिणामों को सरल एवं निर्मल बनाये रखता है।

मगर खेद का विषय है कि आज हमारी समाज दूसरों को अपनावे, उन्हें धर्म मार्ग पर लावे यह तो दूर रहा, किन्तु स्वयं ही गिर कर उठना नहीं चाहती, बिगड़ कर सुधरना उसे याद नहीं है। इस समय एक कवि का वाक्य याद आ जाता है कि—

"अय कौम तुझको गिर के उभरना नहीं आता।
इक वार बिगड़ कर के सुधरना नहीं आता॥"

यदि किसी साधर्मी भाई से कोई अपराध बन जाय और वह प्रायश्चित्त लेकर शुद्ध होने को तैयार हो तो भी हमारी समाज उस पर दया नहीं लाती। समाज के सामने वह विचारा मनुष्यों की गणना में ही नहीं रह जाता है। उसका मुसलमान और ईसाई हो जाना मंजूर, मगर फिर से शुद्ध होकर वह जैनधर्मी नहीं हो सकता, जिनेन्द्र भगवान् के दर्शन नहीं कर सकता, समाज में एक साथ नहीं बैठ सकता और किसी के सामने सिर ऊँचा करके नहीं देख सकता; यह कैसी विचित्र विडंबना है!

उदारचेता पूर्वाचार्य प्रणीत प्रायश्चित्त संबंधी शास्त्रों को

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

देखिये तो मालूम होगा कि उनमें कैसे कैसे पापी, हिंसक, दुराचारी और हत्यारे मनुष्यों तक को दण्ड देकर पुनः स्थितिकरण करने का विधान किया गया है। इस विषय में विशेष न लिखकर मात्र दो श्लोक ही दिये जाते हैं जिनसे आप प्रायश्चित्त शास्त्रों की उदारता का अनुमान लगा सकेंगे। यथा—

साधूपासकबालस्त्रीधेनूनां घातने क्रमात् ।
यावद् द्वादशमासाः स्यात् षष्ठमर्धार्धहानियुक् ॥

—प्रायश्चित्त समुच्चय।

अर्थात्—साधु, उपासक, बालक, स्त्री और गाय के वध (हत्या) का प्रायश्चित्त क्रमशः आधी आधी हानि सहित बारह मास तक षष्ठोपवास (वेला) है।

इसका मतलब यह है कि साधु का घात करने वाला व्यक्ति १२ माह तक एकान्तरे से उपवास करे, और इसके आगे उपासक बालक, स्त्री और गाय की हत्या में आधे आधे करे। पुनश्च—

तृणमांसात्पतत्सर्पपरिसर्पजलौकसां ।
चतुर्दर्शनवाद्यन्तक्षमणा निवधे छिदा ॥ प्रा०चू० ॥

अर्थात्—मृग आदि तृणचर जीवों के घात का १४ उपवास, सिंह आदि मांस भक्षियों के घात का १३ उपवास, मयूरादि पक्षियों के घात का १२ उपवास, सर्पादि के मारने का ११ उपवास, सरट आदि परिसर्पों के घातका १० उपवास और मत्स्यादि जलचर जीवों के घात का ९ उपवास प्रायश्चित बताया गया है।

इतने मात्र से मालूम हो जायगा कि जैनधर्म में उदारता है, प्रेम है, उद्धारकपना है, और कल्याणकारित्व है। एक वार गिरा हुआ व्यक्ति उठाया जा सकता है, पापी भी निष्पाप बनाया जा

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

सकता है और पतित को पावन किया जा सकता है ।

जैनियो ! इस उदारता पर विचार करो, तनिक २ से अपराध करनेवालों को जो धुतकार कर सदा के लिये अलहदा कर देते हो यह जुल्म करना छोड़ो और आचार्य वाक्यों को सामने रखकर अपराधी बंधुका सच्चा न्याय करो। अब कुछ उदारता की आवश्यक्ता है और प्रेम भाव की जरूरत है। कारण कि लोगोंको तनिक ही धक्का लगाने पर उन से द्वेष या अप्रीति करने पर वे घबड़ा कर या उपेक्षित होकर अपने धर्म को छोड़ बैठते हैं ! और दूसरे दिन ईसाई या मुसलमान हो कर किसी गिरजाघर या मसजिद में जा कर धर्म की खोज करने लगते हैं । क्या इस ओर समाज ध्यान नहीं देगी ?

हमारी समाज का सब से बड़ा अन्याय तो यह है कि एक ही अपराध में भिन्न २ दण्ड देती है। पुरुष पापी अपने बलात्कार या छल से किसी स्त्री के साथ दुराचार कर डाले तो स्वार्थी समाज उस पुरुष से लड्डू खाकर उसे जाति में पुनः मिला भी लेती है मगर वह स्त्री किसी प्रकार का भी दण्ड देकर शुद्ध नहीं की जाती! वह विचारी अपराधिनी पंचों के सामने गिड़गिड़ाती है, प्रायश्चित्त चाहती है, कठोर से कठोर दण्ड लेने को तैयार होती है, फिर भी उसकी बात नहीं सुनी जाती, चाहे वह देखते ही देखते मुसलमान या ईसाई क्यों न हो जाय। क्या यही न्याय है, और यही धर्म को उदारता है ? यह कृत्य तो जैनधर्म की उदारता को कलंकित करने वाले हैं।

अत्याचारी दण्ड विधान ।

जैन शास्त्रों में सभी प्रकार के पापियों को प्रायश्चित्त दे कर शुद्ध कर लेने का उदारतामय विधान पाया जाता है। मगर खेद है

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

कि उस ओर समाज का आज तनिक भी ध्यान नहीं है। फिर भी अत्याचारी दण्ड विधि तो चालू ही है। वह दण्ड विधि इतनी दूषित, अन्याय पूर्ण एवं विचित्र है कि उसे दण्ड विधान की विडम्बना ही कहना चाहिये। बुन्देलखण्ड आदि प्रान्तों का दण्ड विधान तो इतना भयंकर एवं क्रूर है कि उसे देखकर हृदय काँप उठता है! उसके कुछ उदाहरण यहाँ दिये जाते हैं—

१—मन्दिर में काम करते हुये यदि चिड़िया आदि का अंडा पैर के नीचे अचानक आ जावे और दब कर मर जावे तो वह व्यक्ति और उसके घर के आदमी भी जाति से बंद कर दिये जाते हैं और उनको मन्दिर में भी नहीं आने दिया जाता!

२—एक बैल गाड़ी में १० जैन स्त्री पुरुष बैठ कर जा रहे हों और उसके नीचे कोई कुत्ता बिल्ली अकस्मात् आकर दब मरे या गाड़ी हाँकने वाले के प्रमाद से दब कर मर जाय तो गाड़ी में बैठे हुये सभी व्यक्ति जैनधर्म और जाति से च्युत कर दिये जाते हैं। फिर उन्हें विवाह शादियों में नहीं बुलाया जाता है, उनके साथ रोटी बेटी व्यवहार बन्द कर दिया जाता है और वे देवदर्शन तथा पूजा आदि के अधिकारी नहीं रहते हैं!

३—यदि किसी के मकान या दरवाजे पर कोई मुसलमान द्वेष वश अंडे डाल जावे और वे मरे हुवे पाये जावें तो बेचारा वह जैन कुटुम्ब जाति और धर्म से बंद कर दिया जाता है।

४—यदि किसी का नाम लेकर कोई स्त्री पुरुष क्रोधावेश में आकर कुंये में गिर पड़े या विष खा ले अथवा फाँसी लगाकर मर जाय तो वह लांछित माना गया व्यक्ति सकुटुम्ब जाति बहिष्कृत किया जाता है और मन्दिर का फाटक भी सदा के लिए बन्द कर दिया जाता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

५—यदि कोई विधवा स्त्री कुकर्मवश गर्भवती हो जाय और उसे दूषित करने वाला व्यक्ति लोभ देकर उस स्त्री से किसी दूसरे गरीब भाई का नाम लिवा देवे तो वह विचारा निर्दोष गरीब धर्म और जाति से पतित कर दिया जाता है।

इसी तरह से और भी अनेक दण्ड की विडम्बनायें हैं जिनके बल पर सैकड़ों कुटुम्ब जाति और धर्म से जुदे करदिये जाते हैं। उसमें भी मजा तो यह है कि उन धर्म और जाति च्युतों का शुद्धि विधान बड़ा ही विचित्र है। वहां तो 'कुत्ता की छूत विलैया को' लगाई जाती है। जैसे एक जाति च्युत व्यक्ति हीरालाल किसी पन्नालाल के विवाह में चुपचाप ही मांडवा के नीचे बैठकर सब के साथ भोजन कर आया और पीछेसे उसका इस प्रकारसे भोजन करना मालूम हो गया तो वह हीरालाल शुद्ध हो जायगा, उस के सब पाप धुल जायंगे और वह मन्दिरमें जाने योग्य तथा जाति में बैठने योग्य हो जायगा। किन्तु वह पन्नालाल उस दोष का भागी हो जायगा और जो गति कल तक हीरालाल की थी वही आज से पन्नालाल की होने लगेगी! अब पन्नालाल जब धन्नालाल के विवाह में उसी प्रकार से जीम आयगा तो वह शुद्ध हो जायगा और धन्नालाल जाति च्युत माना जायगा। इस प्रकार से शुद्धि की विचित्र परम्परा चालू रहती है। इसका परिणाम यह होता है कि प्रभावक, धनिक और रौब दौब वाले श्रीमान् लोग किसी गरीब के यहाँ जीम कर मूँछों पर ताव देने लगते हैं और बेचारे गरीब कुटुम्ब सदा के लिये धर्म और जाति से हाथ धोकर अपने कर्मों को रोया करते हैं। बुन्देलखण्ड में ऐसे जाति च्युत सैकड़ों घर हैं जिन्हें 'विनैकया' 'विनैकावार' या 'लुहरीसैन' कहते हैं।

सैकड़ों विनैकया कुटुम्ब तो ऐसे हैं जिन के दादे परदादे कभी किसी ऐसे ही परम्परागत दोष से च्युत कर डाले गये थे और उन

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

की वह शुद्ध सन्तान धर्म तथा जाति से च्युत होकर जैनियों का मुँह ताका करती है ! उन विचारों को इसका तनिक भी पता नहीं है कि हम धर्म और जाति च्युत क्यों हैं उनका बेटी व्यवहार बड़ी ही कठिनाई से उसी विनैकया जाति में हुआ करता है। और वे बिना देवदर्शन या पूजादि के अपना जीवन पूर्ण किया करतेहैं।

जैनियो ! अपने वात्सल्य अंग को देखो, स्थितिकरण पर विचार करो, और अहिंसा धर्म की बड़ी बड़ी व्याख्याओं पर दृष्टिपात करो। अपने निरपराध भाइयों को इस प्रकार से मक्खी की भांति निकाल कर फेंक देना और उनकी सन्तान दर सन्तान को भी दोषी मानते रहना तथा उनके गिड़गिड़ाने पर और हजार मिन्नतें करने पर भी ध्यान नहीं देना, क्या यही वात्सल्य है ? क्या यही धर्म की उदारता है ? क्या यही अहिंसा का आदर्श है ?

जब कि ज्येष्ठा आर्यिका के व्यभिचार से उत्पन्न हुआ रुद्र मुनि हो जाता है, अग्नि राजा और उसकी पुत्री कृत्तिका के व्यभिचार से उत्पन्न हुआ पुत्र कार्तिकेय दिगम्बर जैन साधु हो जाता है, और व्यभिचारिणी स्त्री से उत्पन्न हुआ सुदृष्टि का जीव मुनि हो कर उसी भव से मोक्ष जाता है तब हमारी समाज के कर्णधार विचारे उन परम्परागत विनैकावार या जाति च्युत दस्सा भाइयों को अभी भी जाति में नहीं मिलाना चाहते और न उन्हें जिन मन्दिर में जाकर दर्शन पूजन करने देना चाहते हैं, यह कितना भयंकर अत्याचार है ! जैन शास्त्रों को ताक में रखकर इस प्रकार का अन्याय करना जैनत्व से सर्वथा बाहर है। अतः यदि आप वास्तव में जैन हैं और जैन शास्त्रों की आज्ञा मान्य है तो अपनी समाज में एक भी जैन भाई ऐसा नहीं रहना चाहिये जो जाति या मन्दिर से बहिष्कृत रहे। सबको यथोचित प्रायश्चित्त दे कर शुद्ध कर लेना ही जैनधर्म की सच्ची उदारता है।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

उदारता के उदाहरण ।

जैनधर्म में सबसे बड़ी विशेषता यह है कि उसमें जाति या वर्ण की अपेक्षा गुणों को महत्व दिया गया है। यही कारण है कि वर्ण की व्यवस्था जन्मतः न मानकर कर्म से मानी गई है। यथा-

मनुष्यजातिरेकैव जातिनामोदयोद्भवा ।
वृत्तिभेदाहिताद्भेदाच्चातुर्विध्यमिहाश्नुते ॥ पर्व ३८-४५ ॥
ब्राह्मणा व्रतसंस्कारात् क्षत्रियाः शस्त्रधारणात् ।
वणिज्योऽर्थार्जनान्न्याय्यात् शूद्रा न्यग्वृत्तिसंश्रयात् ॥

—आदिपुराण पर्व ३८-४६ ।

अर्थात्—जाति नामकर्म के उदय से उत्पन्न हुई मनुष्य जाति एक ही है किन्तु जीविका के भेद से वह चार भागों (वर्णों) में विभक्त होगई है। व्रतों के संस्कार से ब्राह्मण, शस्त्र धारण करने से क्षत्रिय, न्यायपूर्वक द्रव्य कमाने से वैश्य और नीच वृत्ति का आश्रय करने से शूद्र कहे जाते हैं।

तथा च—

क्षत्रियाः क्षततस्त्राणात् वैश्या वाणिज्ययोगतः ।
शूद्राः शिल्पादि सबंधाज्जाता वर्णास्त्रयोऽप्यतः ॥

हरिवंशपुराण सर्ग ९-३९ ।

अर्थात्—दुखियों की रक्षा करने वाले क्षत्रिय, व्यापार करने वाले वैश्य और शिल्प कला से संबंध रखने वाले शूद्र बनाये गये थे।

इस प्रकार जैन धर्म में वर्ण विभाग करके भी गुणों की प्रतिष्ठा की गई है। और जाति या वर्ण का मद करने वालों की निन्दा की गई है तथा उन्हें दुर्गति का पात्र बताया है। आराधना कथाकोश

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

में लक्ष्मीमती की कथा है। उसे अपनी ब्राह्मण जाति का बहुत अभिमान था। इसी से वह दुर्गति को प्राप्त हुई। इसलिए ग्रंथकार उपदेश देते हुए लिखते हैं कि—

मानतो ब्राह्मणी जाता क्रमाद्धीवरदेहजा।
जातिगर्वो न कर्तव्यस्ततः कुत्रापि धीधनैः ॥४५–१६॥

अर्थात्—जाति गर्व के कारण एक ब्राह्मणी भी ढीमर की लड़की हुई, इसलिए विद्वानों को जातिका गर्व नहीं करना चाहिये।

इधर तो जाति का गर्व न करने का उपदेश देकर उदारता का पाठ पढ़ाया है और उधर जाति गर्वके कारण पतित होकर ढीमर के यहां उत्पन्न होने वाली लड़की का आदर्श उद्धार बता कर जैन धर्म की उदारता को और भी स्पष्ट किया है। यथा—

ततः समाधिगुप्तेन मुनीन्द्रेण प्रजल्पितम्।
धर्ममाकर्ण्य जैनेन्द्रं सुरेन्द्राद्यैः समर्चितम् ॥ २४ ॥
संजाता क्षुल्लिका तत्र तपः कृत्वा स्वशक्तितः।
मृत्वा स्वर्गं समासाद्य तस्मादागत्य भूतले ॥ २५ ॥
आराधना कथा कोश नं० ४५॥

अर्थात्—समाधिगुप्त मुनिराज के मुख के जैनधर्म का उपदेश सुनकर वह ढीमर (मच्छीमार) की लड़की क्षुल्लिका होगई और शान्ति पूर्वक तप करके स्वर्ग गई। इत्यादि।

इस प्रकार से एक शूद्र (ढीमर) की कन्या मुनिराज का उपदेश सुनकर जैनियों की पूज्य क्षुल्लिका हो जाती है। क्या यह जैनधर्म की कम उदारता है? ऐसे उदारता पूर्ण अनेक उदाहरण तो इसी पुस्तक के अनेक प्रकरणों में लिखे जा चुके हैं और ऐसे ही सैकड़ों उदाहरण और भी उपस्थित किए जा सकते हैं जो जैन

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

धर्म का मुख उज्ज्वल करने वाले हैं। लेकिन विस्तार भय से उन सब का वर्णन करना यहां आशक्त है। हां, कुछ ऐसे उदाहरणोंका सारांश यहां उपस्थित किया जाता है। आशा है कि जैन समाज इस पर गंभीरता से विचार करेगी।

१—**अग्निभूत**—मुनि ने चाण्डाल की अंधी लड़की को श्राविका के व्रत धारण कराये। वही तीसरे भव में सुकुमाल हुई थी।

२—**पूर्णभद्र**—और मानभद्र नामक दो वैश्य पुत्रों ने एक चाण्डाल को श्रावक के व्रत ग्रहण कराये। जिससे वह चाण्डाल मर कर सोलहवें स्वर्ग में ऋद्धिधारी देव हुआ।

३—**म्लेच्छ कन्या**—जरा से भगवान नेमिनाथ के चाचा वसुदेव ने विवाह किया, जिससे जरत्कुमार हुआ। उसने मुनिदीक्षा ग्रहण की थी।

४—**महाराजा श्रेणिक**—बौद्ध थे तब शिकार खेलते थे और घोर हिंसा करते थे, मगर जब जैन हुए तब शिकार आदि त्याग कर जैनियों के महापुरुष होगये।

५—**विद्युत चोर**—चोरों का सरदार होने पर भी जम्बू स्वामी के साथ मुनि होगया और तप करके सर्वार्थ सिद्धि गया।

६—**भैंसों तक का मांस खाजाने वाला**—पापी मृगध्वज

मुनिदत्तमुनैः पार्श्वे जैनीं दीक्षां समाश्रितः।
क्षयं नीत्वा सुधीर्ध्यानात् घातिकर्मचतुष्टयम्॥
केवलज्ञानमुत्पाद्य संजातो भुवनार्चितः॥

आराधना कथा ५५वीं॥

मुनिदत्त मुनि के पास जिनदीक्षा लेकर तप द्वारा घातिया कर्मों को नाश कर जगत्पूज्य हो जैनियों का परमात्मा बन गया।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

७–परस्त्री सेवीका मुनिदान—राजा सुमुख वीरक सेठ की पत्नी बनमाला पर मुग्ध होगया। और उसे दूतियों के द्वारा अपने महलों में बुला लिया तथा उसे घर नहीं जाने दिया और अपनी स्त्री बनाकर उससे प्रगाढ़ काम सेवन करने लगा। एकदिन राजा सुमुख के मकान पर महामुनि पधारे। वे सब जानने वाले विशुद्ध ज्ञानी थे, फिर भी राजा के यहां आहार लिया। राजा सुमुख और बनमाला दोनों (विनैकावार या दस्साओं) ने मिलकर आहार दिया और पुण्य संचय किया। इसके बाद भी वे दोनों काम सेवन करते रहे। एक समय बिजली गिरने से वे मर कर विद्याधर विद्याधरी हुए। इन्हीं दोनों से 'हरि' नामक पुत्र हुआ जिससे 'हरिवंश' की उत्पत्ति हुई। (देखो हरिवंश पुराण सर्ग १४ श्लोक ४७ से सर्ग १५ श्लोक १३ तक)

कहाँ तो यह उदारता कि ऐसे व्यभिचारी लोग भी मुनिदान देकर पुण्य संचय कर सकें और कहां आज तनिक से लांछन से पतित किया हुआ जैन दस्सा-विनैका या जातिच्युत होकर जिनेन्द्र के दर्शनों को भी तरसता है। खेद !

८–वेश्या और वेश्या सेवी का उद्धार—हरिवंश पुराण के सर्ग २१ में चारुदत्त और बसन्तसेना का बहुत ही उदारतापूर्ण जीवन चरित्र है। उसका कुछ भाग श्लोकों को न लिख कर उनकी संख्या सहित यहाँ दिया जाता है। चारुदत्त ने बाल्यावस्था में ही अणुव्रत लेलिये थे (२१-१२) फिर भी चारुदत्त काका के साथ बसन्तसेना वेश्या के यहाँ माता की प्रेरणा से पहुंचाया गया (२१-४०) बसन्तसेना वेश्या की माता ने चारुदत्तके हाथ में अपनी पुत्री का हाथ पकड़ा दिया (२१-५८) फिर वे दोनों मजे से संभोग करते रहे। अन्त में बसन्तसेना की माता ने चारुदत्त को घर से

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

बाहर निकाल दिया (२१-७३) चारुदत्त व्यापार करने चले गये। फिर वापिस आकर घर में आनन्द से रहने लगे। बसन्तसेना वेश्या भी अपना घर छोड़कर चारुदत्त के साथ रहने लगी। उसने एक आर्यिका के पास श्रावक के व्रत ग्रहण किये थे अतः चारुदत्त ने भी उसे सहर्ष अपनाया और फिर पत्नी बनाकर रखा (२१-१७६) बाद में वेश्या सेवी चारुदत्त मुनि होकर सर्वार्थसिद्धि पधारे तथा उस वेश्या को भी सद्गति मिली।

इस प्रकार एक वेश्या सेवी और वेश्या का भी जहां उद्धार हो सकता हो उस धर्म की उदारता की फिर क्या पूछना ? मजा तो यह है कि चारुदत्त उस वेश्या को फिर भी प्रेम सहित अपना कर अपने घर पर रख लेता है और समाज ने कोई विरोध नहीं किया। मगर आजकल तो स्वार्थी पुरुष समाज में ऐसे पतितों को एक तो पुनः मिलाते नहीं हैं, और यदि मिलावें भी तो पुरुष को मिलाकर बिचारी स्त्री को अनाथिनी, भिखारिणी और पतिता बनाकर सदा के लिये निकाल देते हैं। क्या यह निर्दयता जैनधर्म की उदारता के सामने घोर पाप नहीं है ?

९—व्यभिचारिणी की सन्तान—हरिवंश पुराण के सर्ग २९ की एक कथा बहुत ही उदार है। उसका भाव यह है कि तपस्विनी ऋषिदत्ता के आश्रम में जाकर राजा शीलायुध ने एकान्त पाकर उससे व्यभिचार किया (३९) उसके गर्भ से ऐणी पुत्र उत्पन्न हुआ। प्रसव पीड़ा से ऋषिदत्ता मर गई और सम्यक्त के प्रभाव से नागकुमारी हुई। व्यभिचारी राजा शीलायुध दिगम्बर मुनि होकर स्वर्ग गया (५७)

ऐणीपुत्र की कन्या प्रियंगुसुन्दरी को एकान्त में पाकर वसुदेव ने उसके साथ काम क्रीड़ा की (६८) और उसे व्यभिचारजात जानकर भी अपनाया और संभोग करने के बाद सब के सामने

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

प्रगट विवाह किया (७०)

१०—मांसभक्षी की मुनिदीक्षा—सुधर्मा राजा को माँस भक्षण का शौक था। एक दिन मुनि चित्ररथ के उपदेश से मांस त्याग कर तीनसौ राजाओं के साथ मुनि होगया (हरि० ३३-१५२)

११—कुमारी कन्या की सन्तान—राजा पाण्डु ने कुन्ती से कुमारी अवस्था में ही संभोग किया, जिससे कर्ण उत्पन्न हुये।

"पाण्डोः कुन्त्यां समुत्पन्नः कर्णः कन्याप्रसंगतः"।

॥ हरि० ४५-३७॥

और फिर बाद में उसी से विवाह हुआ, जिससे युधिष्ठिर अर्जुन और भीम उत्पन्न होकर मोक्ष गये।

१२—चाण्डाल का उद्धार—एक चाण्डाल जैनधर्म का उपदेश सुनकर संसार से विरक्त होगया और दीनता को छोड़कर चारों प्रकार के आहारों का परित्याग करके व्रती हो गया। वही मरकर नन्दीश्वर द्वीप में देव हुआ। यथा—

निर्वेदी दीनतां त्यक्ता त्यक्ताहारचतुर्विधं।
मासेन श्वपचो मृत्वा भूत्वा नन्दीश्वरोऽमरः॥

॥ हरि० ४३-१५५॥

इस प्रकार एक चाण्डाल अपनी दीनता को (कि मैं नीच हूं) छोड़कर व्रती बन जाता है और देव होता है। ऐसी पतितोद्धारक उदारता और कहाँ मिलेगी?

१३—शिकारी मुनि होगया—जंगल में शिकार खेलता हुआ और मृग का वध करके आया हुआ एक राजा मुनिराज के उपदेश से खून भरे हाथों को धोकर तुरन्त मुनि होजाता है।

१४—भील के श्रावक व्रत—महावीर स्वामी का जीव जब भील था तब मुनिराज के उपदेश से श्रावक के व्रत लेलिये थे और

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

क्रमशः विशुद्ध होता हुआ महावीर स्वामी की पर्याय में आया। इन उदाहरणों से जैनधर्म की उदारता का कुछ ज्ञान होसकता है। यह बात दूसरी है कि वर्तमान जैन समाज इस उदारताका उपयोग नहीं कर रही है। इसीलिए उसकी दिनोंदिन अवनति हो रही है। यदि जैन समाज पुनः अपने उदार धर्म पर विचार करे तो जैनधर्म का समस्त जगत में अद्भुत प्रभाव जम सकता है।

जैनधर्म में शूद्रों के अधिकार।

इस पुस्तक में अभी तक ऐसे अनेक उदाहरण दिये जा चुके हैं जिनसे ज्ञात हुआ होगा कि घोर से घोर पापी, नीच से नीच आचरण वाले और चांडालादिक दीन हीन शूद्र भी जैनधर्म की शरण लेकर पवित्र हुये हैं। जैनधर्म में सब को पचाने की शक्ति है। जहां पर वर्ण की अपेक्षा सदाचार को विशेष महत्व दिया गया है वहां ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्रादिक का पक्षपात भी कैसे होसकता है? इसी लिऐ कहना होगा कि जैनधर्म में शूद्रों को भी वही अधिकार हैं जो ब्राह्मणादि को हो सकते हैं शूद्र जिन मन्दिर में जासकते हैं, जिन पूजा कर सकते हैं, जिन बिम्ब का स्पर्श कर सकते हैं, उत्कृष्ट श्रावक तथा मुनि के व्रत ले सकते हैं। नीचे लिखी कुछ कथाओं से यह बात विशेष स्पष्ट हो जाती है। इन बातों से व्यर्थ ही न भड़क कर इन शास्त्रीय प्रमाणों पर विचार करिये।

श्रेणिक चरित्र में तीन शूद्र कन्याओं का विस्तार से वर्णन है उनके घर में मुर्गियां पाली जाती थीं। वे तीनों नीच कुल में उत्पन्न हुई थीं और उनका रहन सहन, आकृति आदि बहुत ही खराब थी। एक वार वे मुनिराज के पास पहुंची और उनके उपदेश से प्रभावित हो अपने उद्धार का मार्ग पूछा। मुनिराज ने उन्हें लक्ष्य

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

विधान व्रत करने को कहा। इस व्रत में भगवान जिनेन्द्र की प्रतिमा का प्रक्षाल-पूजादि भी करनी पड़ती है। मुनि और श्रावकों को दान देना पड़ता है तथा अनेक धार्मिक विधियां (उपवासादि) करना पड़ती हैं। उन कन्याओं ने यह सब शुद्ध अन्तःकरण से स्वीकार किया। यथा—

तिस्रोपि तद्व्रतं चक्रुरुद्यापनक्रियायुतम्।
मुनिराजोपदेशेन श्रावकाणां सहायतः॥ ५७॥
श्रावकव्रतसंयुक्ता वभूवुस्ताश्च कन्यकाः।
क्षमादिव्रतसंकीर्णाः शीलांगपरिभूषिताः॥५८॥
कियत्काले गते कन्या आसाद्य जिनमन्दिरम्।
सपर्यां महतां चक्रुर्मनोवाक्कायशुद्धितः॥ ५९॥
ततः आयुक्षयें कन्याः कृत्वा समाधिपंचताम्।
अर्हद्बीजाक्षरं स्मृत्वा गुरुपादं प्रणम्य च॥ ६०॥
पंचमे दिवि संजाता महादेवा स्फुरत्प्रभाः।
संछित्वा रमणीलिंगं सानंदयौवनान्विताः॥ ६१॥

—गौतमचरित्र तीसरा अधिकार।

अर्थात्—उन तीनों शूद्र कन्याओं ने मुनिराज के उपदेशानुसार श्रावकों की सहायता से उद्यापन क्रिया सहित लब्धिविधान व्रत किया। तथा उन कन्याओं ने श्रावक के व्रत धारण करके क्षमादि दश धर्म और शीलव्रत धारण किया। कुछ समय बाद उन शूद्र कन्याओं ने जिन मन्दिर में जाकर मन वचन काय की शुद्धता-पूर्वक जिनेन्द्र भगवान की बड़ी पूजा की। फिर आयु पूर्ण होने पर वे कन्यायें समाधिमरण धारण करके अर्हन्त देव के बीजाक्षरों को स्मरण करती हुई और मुनिराज के चरणों को नमस्कार करके स्त्रीपर्याय छेद कर पांचवें स्वर्ग में देव हुई।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इस कथा भाग से जैनधर्म की उदारता अधिक स्पष्ट हो जाती है। जहाँ आज के दुराग्रही लोग स्त्री मात्र को पूजा प्रक्षाल का अनधिकारी बतलाते हैं वहाँ मुर्गा मुर्गियों को पालने वाली शूद्र जाति की कन्यायें जिन मन्दिर में जाकर महा पूजा करती हैं और अपना भव सुधार कर देव हो जाती हैं। शूद्रों की कन्याओं का समाधिमरण धारण करना, बीजाक्षरों का जाप करना आदि भी जैनधर्म की उदारता को उद्घोषित करता है।

इसके अतिरिक्त एक ग्वाला के द्वारा जिन पूजा का विधान बताने वाली भी ११३ वीं कथा आराधना कथा कोश में है। उस का भाव इस प्रकार है—

धनदत्त नामक एक ग्वाला को गायें चराते समय एक तालाब में सुन्दर कमल मिल गया। ग्वाला ने जिनमन्दिर में जाकर राजा के द्वारा सुगुप्त मुनि से पूछा कि सर्व श्रेष्ठ व्यक्ति को यह कमल चढ़ाना है। आप बताइये कि संसार में सर्व श्रेष्ठ कौन है? मुनिराज ने जिन भगवान को सर्व श्रेष्ठ बतलाया, तदनुसार धनदत्त ग्वाला राजा और नागरिकों के साथ जिन मन्दिर में गया और जिनेन्द्र भगवान की मूर्ति (चरणों) पर वह कमल ग्वाला ने अपने हाथों से भक्तिपूर्वक चढ़ा दिया। यथा—

तदा गोपालकः सोऽपि स्थित्वा श्रीमज्जिनाग्रतः।
भो सर्वोत्कृष्ट ते पद्म गृहाणेदमिति स्फुटम् ॥१५॥

उक्त्वा जिनेन्द्रपादाब्जो परिक्षिप्त्वा सुपंकजम्।
गतो मुग्धजनानां च भवेत्सत्कर्म शर्मदम् ॥१६॥

इस प्रकार एक शूद्र ग्वाला के द्वारा जिन प्रतिमा के चरणों पर कमल का चढ़ाया जाना शूद्रों के पूजाधिकार को स्पष्ट सूचित

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

करता है। ग्रन्थकार ने भी ऐसे मुग्धजनों के इस कार्य को सुख-कारी बतलाया है।

इसी प्रकार और भी अनेक कथायें शास्त्रों में भरी पड़ी है जिनमें शूद्रों को वही अधिकार दिये गये हैं जो कि अन्य वर्णों को हैं।

सोमदत्त माली प्रति दिन जिनेन्द्र भगवान की पूजा करता था। चम्पानगर का एक ग्वाला मुनिराज से णमोकार मन्त्र सीख कर स्वर्ग गया। अनंगसेना वेश्या अपने प्रेमी धनकीर्ति सेठ के मुनि हो जाने पर स्वयं भी दीक्षित हो गई और स्वर्ग गई। एक ढीमर (कहार) की पुत्री प्रियंगुलता सम्यक्त्व में दृढ़ थी। उसने एक साधुके पाखण्ड की धज्जियाँ उडादी और उसेभी जैन बनाया था। काणा नाम की ढीमर की लड़की को क्षुल्लिका होने की कथा तो हम पहिले ही लिख आये हैं। देविल कुम्हार ने एक धर्मशाला बनवाई, वह जैनधर्म का श्रद्धानी था। अपनी धर्मशाला में दिगम्बर मुनिराज को ठहराया। और पुण्य के प्रताप से वह देव हो गया। चामेक वेश्या जैनधर्म की परम उपासिका थी। उसने जिन भवन को दान दिया था। उस में शूद्र जाति के मुनि भी ठहरते थे। तेली जाति की एक महिला मानकव्वे जैन धर्म पर श्रद्धा रखती थी, आर्यिका श्रीमती की वह पट्ट शिष्या थी। उसने एक जिनमन्दिर भी बनवाया था।

इन उदाहरणों से शूद्रोंके अधिकारों का कुछ भास हो सकता है। श्वेताम्बर जैन शास्त्रों के अनुसार तो चाण्डाल जैसे अस्पृश्य कहे जाने वाले शूद्रों को भी दीक्षा देने का वर्णन है। चित्त और संभूति नामक चाण्डाल पुत्र जब वैदिकों के तिरस्कार से दुखी हो कर आत्मघात करना चाहते थे तब उन्हें जैन दीक्षा सहायक हुई और जैनों ने उन्हें अपनाया। हरिकेशी चाण्डाल भी जब वैदिकों

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

के द्वारा तिरस्कृत हुआ तब उसने जैनधर्म की शरण ली और जैन दीक्षा लेकर असाधारण महात्मा बन गया।

इस प्रकार जिस जैनधर्म ने वैदिकों के अत्याचार से पीडित प्राणियों को शरण देकर पवित्र बनाया, उन्हें उच्च स्थान दिया और जाति मद का मर्दन किया, वही पतित पावन जैनधर्म वर्तमान के स्वार्थी, संकुचित दृष्टि एवं जाति मदमत्त जैनों के हाथों में आकर बदनाम हो रहा है। खेद है कि हम प्रति दिन शास्त्रों की स्वाध्याय करते हुये भी उनकी कथाओं पर, सिद्धान्त पर, अथवा अन्तरंग दृष्टि पर ध्यान नहीं देते हैं। ऐसी स्वाध्याय किस काम की? और ऐसा धर्मात्मापना किस काम का? जहाँ उदारता से विचार न किया जाय।

जैनाचार्यों ने प्रत्येक शूद्र की शुद्धि के लिये तीन बातें मुख्य बताई हैं। १–मांस मदिरादि का त्याग करके शुद्ध आचारवान हो, २–आसन वसन पवित्र हो, ३–और स्नानादि से शरीर की शुद्धि हो। इसी बात को श्रीसोमदेवाचार्य ने 'नीतिवाक्यामृत' में इस प्रकार कहा है—

"आचारानवद्यत्वं शुचिरुपस्कारः शरीरशुद्धिश्च करोति शूद्रानपि देवद्विजातितपस्विपरिकर्मसु योग्यान्।"

इस प्रकार तीन तरह की शुद्धियां होने पर शूद्र भी साधु होने तक के योग्य हो जाता है। आशाधरजी ने लिखा है कि—

"जात्या हीनोऽपि कालादिलब्धौ ह्यात्मास्ति धर्मभाक्।"

अर्थात् जाति से हीन या नीच होने पर भी कालादिक लब्धि-समयानुकूलता मिलने पर वह जैनधर्म का अधिकारी हो जाता है। समन्तभद्राचार्य के कथनानुसार तो सम्यग्दृष्टि चाण्डाल भी देव

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

माना गया हैं, पूज्य माना गया है और गणधरादि द्वारा प्रशंसनीय कहा गया है। यथा—

सम्यग्दर्शनसम्पन्नमपि मातंगदेहजम्।
देवा देवं विदुर्भस्मगूढ़ागारान्तरौजसम् ॥२८॥

—रत्नकरण्ड श्रावकाचार।

शूद्रों की तो बात ही क्या है जैन शास्त्रों में महा म्लेच्छों तक को मुनि होने का अधिकार दिया गया है। जो मुनि हो सकता है उसके फिर कौन से अधिकार बाकी रह सकते हैं? लब्धिसार में म्लेच्छ को भी मुनि होने का विधान इस प्रकार किया है—

तत्तो पडिवज्जगया अज्जमिलेच्छे मिलेच्छ अज्जेय।
कमसो अवरं अवरं वरं वरं होदि संखं वा ॥१९३॥

अर्थ—प्रतिपद्य स्थानों में से प्रथम आर्यखण्ड का मनुष्य मिथ्यादृष्टि से संयमी हुआ, उसके जघन्य स्थान है। उस के बाद असंख्यात लोक मात्र षट् स्थान के ऊपर म्लेच्छखण्ड का मनुष्य मिथ्यादृष्टि से सकल संयमी (मुनि) हुआ, उसका जघन्य स्थान है। उसके ऊपर म्लेच्छ खण्ड का मनुष्य देश संयत से सकल संयमी हुआ, उसका उत्कृष्ट स्थान है। उसके बाद आर्य खण्ड का मनुष्य देश संयत से सकल संयमी हुआ उसका उत्कृष्ट स्थान है।

लब्धिसार की इसी १९३ वीं गाथा की संस्कृत टीका इस प्रकार है—

"म्लेच्छभूमिजमनुष्याणां सकलसंयमग्रहणं कथं भवतीति नाशंकितव्यं। दिग्विजयकाले चक्रवर्तिना सह आर्यखण्डमागतानां म्लेच्छराजानां चक्रवर्त्यादिभिः सह जातवैवाहिकसंबंधानां संयमप्रतिपत्तेरविरोधात्। अथवा चक्र-

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

वर्त्यादिपरिणीतानां गर्भेषूत्पन्नस्य मातृपक्षापेक्षया म्लेच्छव्यपदेशभाजः संयमसंभवात्। तथा जातीयकानां दीक्षार्हत्वे प्रतिषेधाभावात्।"

अर्थात्—कोई यों कह सकता है कि म्लेच्छ भूमिज मनुष्य मुनि कैसे हो सकते हैं ? यह शंका ठीक नहीं है, कारण कि दिग्विजय के समय चक्रवर्ती के साथ आर्य खण्ड में आये हुये म्लेच्छ राजाओं को संयम की प्राप्ति में कोई विरोध नहीं हो सकता। तात्पर्य यह है कि वे म्लेच्छ भूमि से आर्यखण्ड में आकर चक्रवर्ती आदि से संबंधित होकर मुनि बन सकते हैं। दूसरी बात यह है कि चक्रवर्ती के द्वारा विवाही गई म्लेच्छ कन्या से उत्पन्न हुई संतान माता की अपेक्षा से म्लेच्छ कही जा सकती है, और उसके मुनि होने में किसी भी प्रकार से कोई निषेध नहीं हो सकता।

इसी बात को सिद्धान्तराज श्रीजयधवल ग्रंथ में भी इस प्रकार से लिखा है कि—

"जइ एवं कुदो तत्थ संजमग्गहणसंभवोत्ति णा संकणिज्जं। दिसाविजयपयट्टचक्कवट्टिखंधावारेण सहमज्झिमखण्डमागयाणं मिलेच्छएयाणं तत्थ चक्कवट्टि आदिहिं सह जादवेवाहियसंबंधाणं संजमपडिवत्तीए विरोहाभावादो। अहवा तत्तत्कन्यकानां चक्रवर्त्यादि परिणीतानां गर्भेषूत्पन्ना मातृपक्षापेक्षया स्वयमकर्मभूमिजा इतीहविवक्षिताः ततो न किंचिद्विप्रतिषिद्धं। तयाजातीयकानां दीक्षार्हत्वेप्रतिषेधाभावादिति।"

—जयधवल, आराकी प्रति पृ०८२७–२८

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इन टीकाओं से दो बातों का स्पष्टीकरण होता है। एक तो म्लेच्छ लोग मुनि दीक्षा तक ले सकते हैं और दूसरे म्लेच्छ कन्या से विवाह करने पर भी कोई धर्म कर्म की हानि नहीं हो सकती, प्रत्युत उस म्लेच्छ कन्या से उत्पन्न हुई संतान भी उतनी ही धर्मादि की अधिकारिणी होती है जितनी कि सजातीय कन्या से उत्पन्न हुई सन्तान।

प्रवचनसार की जयसेनाचार्य कृत टीका में भी सत् शूद्र को जिन दीक्षा लेने का स्पष्ट विधान है। यथा—

"एवंगुणविशिष्टपुरुषो जिनदीक्षाग्रहणे योग्यो भवति। यथायोग्यं सच्छूद्राद्यपि"

और भी इसी प्रकार के अनेक कथन जैन शास्त्रों में पाये जाते हैं जो जैनधर्म की उदारता के द्योतक हैं। प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक दशा में धर्म सेवन करनेका अधिकार है। 'हरिवंशपुराण' के २६वें सर्ग के श्लोक १४ से २२ तक का वर्णन देखकर पाठकों को ज्ञात हो जायगा कि जैनधर्म ने कैसे कैसे अस्पृश्य शूद्र समान व्यक्तियों को जिन मन्दिर में जाकर धर्म कमाने का अधिकार दिया है। वह कथन इस प्रकार है कि वसुदेव अपनी प्रियतमा मदनवेगा के साथ सिद्धकूट चैत्यालय की बंदना करने गये। वहाँ पर चित्र विचित्र वेषधारी लोगों को बैठा देखकर कुमार ने रानी मदनवेगा से उन की जाति जानने बावत कहा। तब मदनवेगा बोली—

मैं इनमें से इन मातंग जाति के विद्याधरों का वर्णन करती हूं नील मेघ के समान श्याम नीली माला धारण किये मातंगस्तंभ के सहारे बैठे हुये ये मातंग जाति के विद्याधर हैं॥ १५॥ मुर्दों की हड्डियों के भूषणों से युक्त राख के लपेटने से भद मैले स्मशान

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

स्तंभ के सहारे बैठे हुये यह स्मशान जाति के विद्याधर हैं ॥१६॥ वैडूर्य मणि के समान नीले नीले वस्त्रों को धारण किये पाण्डुर स्तंभ के सहारे बैठे हुये पाण्डुक जाति के विद्याधर हैं ॥ १७ ॥ काले काले मृग चर्मों को ओढे, काले चमड़े के वस्त्र और मालाओं को धारे काल स्तंभ का आश्रय लेकर बैठे हुए ये कालश्वपा जाति के विद्याधर हैं ॥ १८ ॥ इत्यादि

इससे क्या सिद्ध होता है ? यही न कि रुंड मुंड को गले में डाले हुये, हड्डियों के आभूषण पहिने हुये और चमड़े के वस्त्र चढ़ाये हुये लोग भी सिद्धकूट जिन चैत्यालय के दर्शन करते थे ? मगर विचार तो करिये कि आज जैनों ने उस उदारता का कितनी निर्दयता से विनाश किया है। यदि वर्तमान में जैनधर्म की उदारता से काम लिया जाय तो जैनधर्म विश्वधर्म हो जाय और समस्त विश्व जैनधर्मी हो जाय।

स्त्रियों के अधिकार।

जैनधर्म की सब से बड़ी उदारता यह है कि पुरुषों की भांति स्त्रियों को भी तमाम धार्मिक अधिकार दिये गये हैं। जिस प्रकार पुरुष पूजा प्रक्षाल कर सकता है उसी प्रकार स्त्रियां भी करसकती हैं। यदि पुरुष श्रावक के उच्च व्रतों को पाल सकता है तो स्त्रियां भी उच्च श्राविका होसकती हैं। यदि पुरुष ऊंचे से ऊंचे धर्मग्रन्थों के पाठी होसकते हैं तो स्त्रियों को भी यही अधिकार हैं। यदि पुरुष मुनि होसकता है तो स्त्रियां भी आर्यिका होकर पंच महाव्रत पालन करती हैं।

धार्मिक अधिकारों की भांति सामाजिक अधिकार भी स्त्रियों के लिये समान ही हैं यह बात दूसरी है कि वैदिक धर्म आदि के प्रभाव से जैनसमाज अपने कर्तव्यों को और धर्म की आज्ञाओं

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

को भूलकर विपरीत मार्ग को भी धर्म समझ रही हो। जैसे सम्पत्ति का अधिकारी पुत्र तो होता है किन्तु पुत्रियों को उसका अधिकारी नहीं माना जाता है। ऐसा क्यों होता है? क्या पुत्र की भांति पुत्री को माता ९ माह पेट में नहीं रखती? क्या पुत्र के समान पुत्री के जनने में कष्ट नहीं सहती? क्या पुत्र की भांति पुत्री के पालन पोषण में तकलीफें नहीं होतीं? बतलाइये तो सही कि पुत्रियाँ क्यों न पुत्रों के समान सम्पत्ति की अधिकारणी हों। हमारे जैन शास्त्रों ने तो इस संबंध में पूरी उदारता बताते हुए स्पष्ट लिखा है कि—

"पुत्र्यश्च संविभागार्हाः समं पुत्रैः समांशकैः॥"१५४॥

—आदिपुराण पर्व ३८॥

अर्थात्—पुत्रों की भांति पुत्रियों को भी बराबर भाग बांटकर देना चाहिये।

इसी प्रकार जैन कानून के अनुसार स्त्रियों को, विधवाओं को या कन्याओं को पुरुष के समान ही सब प्रकार के अधिकार हैं। इसके लिये विद्यावारिधि जैन दर्शन दिवाकर पं० चंपतरायजी जैन बैरिष्टर कृत 'जैनलॉ' नामक ग्रन्थ देखना चाहिये।

जैन शास्त्रों में स्त्री सन्मान के भी अनेक कथन पाये जाते हैं। जब कि मूढ़ जनता स्त्रियों को पैर की जूती या दासी समझती है तब जैन राजा महाराजा अपनी रानियों का उठकर सन्मान करते थे और अपना अर्धासन बैठने को देते थे। भगवान महावीर स्वामी की माता महारानी प्रियकारिणी जब अपने स्वप्नों का फल पूछने महाराजा सिद्धार्थ के पास गईं तब महाराजा ने अपनी धर्मपत्नी को आधा आसन दिया और महारानी ने उस पर बैठ कर अपने स्वप्नों का वर्णन किया। यथा—

"संप्राप्तार्द्धासना स्वप्नान् यथाक्रममुदाहरत्॥"

—उत्तरपुराण।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

इसी प्रकार महारानियों का राजसभाओं में जाने और वहाँ पर सन्मान प्राप्त करने के अनेक उदाहरण जैन शास्त्रों में भरे पड़े हैं। जब कि वेद आदि स्त्रियों को धर्म ग्रन्थों के अध्ययन करने का निषेध करते हुये लिखते हैं कि "स्त्रीशूद्रौनाधीयाताम्" तब जैनग्रंथ स्त्रियों को ग्यारह अंग की धारी होना बताते हैं। यथा—

द्वादशांगधरो जातः क्षिप्रं मेघेश्वरो गणी।
एकादशांगभृज्जाताऽऽर्यिकापि सुलोचना ॥ ५२ ॥

हरिवंशपुराण सर्ग १२।

अर्थात्—जयकुमार भगवान का द्वादशांग धारी गणधर हुआ और सुलोचना ग्यारह अंग की धारक आर्यिका हुई।

इसी प्रकार स्त्रियाँ सिद्धान्त ग्रन्थों के अध्ययन के साथ ही जिनप्रतिमा का पूजा प्रक्षाल भी किया करती थीं। अंजना सुन्दरी ने अपनी सखी वसन्तमाला के साथ बन में रहते हुये गुफा में विराजमान जिनमूर्ति का पूजन प्रक्षाल किया था। मदनवेगा ने वसुदेव के साथ सिद्धकूट चैत्यालय में जिन पूजा की थी। मैना-सुन्दरी तो प्रति दिन प्रतिमा का प्रक्षाल करती थी और अपने पति श्रीपाल राजा को गंधोदक लगाती थी। इसी प्रकार स्त्रियों द्वारा पूजा प्रक्षाल किये जाने के अनेक उदाहरण मिल सकते हैं।

हर्ष का विषय है कि आज भी जैन समाज में स्त्रियाँ पूजन प्रक्षाल करती हैं, मगर खेद है कि अब भी कुछ हठग्राही लोग स्त्रियों को इस धर्म कृत्य का अनधिकारी समझते हैं। ऐसी अविचारित बुद्धि पर दया आती है। कारण कि जो स्त्री आर्यिका होने का अधिकार रखती है वह पूजा प्रक्षाल न कर सके यह विचित्रता की बात है। पूजा प्रक्षाल तो आरंभ होने के कारण कर्म बंध का निमित्त है, इस से तो संसार (स्वर्ग आदि) में ही चक्कर लगाना

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पड़ता है जब कि आर्यिका होना संवर और निर्जरा का कारण है जिससे क्रमशः मोक्ष की प्राप्ति होती है । तब विचार करिये कि एक स्त्री मोक्ष के कारणभूत संवर निर्जरा करने वाले कार्य तो कर सकें और संसार के कारणभूत बंध कर्ता पूजन प्रक्षाल आदि न कर सके, यह कैसे स्वीकार किया जा सकता है ?

यदि सच पूछा जाय तो जैनधर्म सदा से उदार रहा है, उसे स्त्री पुरुष या ब्राह्मण शूद्र का कोई पक्षपात नहीं था। हाँ, कुछ ऐसे दुराग्रही पापात्मा हो गये हैं जिन्होंने ऐसे पक्षपाती कथन कर के जैनधर्म को कलंकित किया है। इसी से खेद खिन्न होकर आचार्य कल्प पंडित प्रवर टोडरमलजी ने लिखा है कि—

"बहुरि केई पापी पुरुषां अपना कल्पित कथन किया है। अर तिनकौं जिन वचन ठहरावे हैं। तिनकौं जैनमत का शास्त्र जानि प्रमाण न करना। तहां भी प्रमाणादिक तैं परीक्षा करि विरुद्ध अर्थ को मिथ्या जानना।"

—मोक्षमार्गप्रकाशक पृ०३०७॥

तात्पर्य यह है कि जिन ग्रन्थों में जैनधर्म की उदारता के विरुद्ध कथन है वह जैन ग्रंथ कहे जाने पर भी मिथ्या मानना चाहिये। कारण कि कितने ही पक्षपाती लोग अन्य संस्कृतियों से प्रभावित होकर स्त्रियों के अधिकारों को तथा जैनधर्म की उदारता को कुचलते हुये भी अपने को निष्पक्ष मानकर ग्रंथकार बन बैठे हैं। जहाँ शूद्र कन्यायें भी जिन पूजा और प्रतिमा प्रक्षाल कर सकती हैं (देखो गौतमचरित्र तीसरा अधिकार) वहाँ स्त्रियों को पूजा प्रक्षाल का अनधिकारी बताना महा मूढ़ता नहीं तो और क्या है? स्त्रियाँ पूजा प्रक्षाल ही नहीं करती थी किन्तु मुनि दान भी देती थी और अब भी देती हैं। यथा—

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

श्रीजिनेन्द्रपदांभोजसपर्यायां सुमानसा ।
शचीव सा तदा जाता जैनधर्मपरायणा ॥८६॥

ज्ञानधनाय कांताय शुद्धचारित्रधारिणे ।
मुनीन्द्राय शुभाहारं ददौ पापविनाशनम् ॥८७॥

—गौतमचरित्र तीसरा अधिकार ॥

अर्थात्—स्थंडिला नाम की ब्राह्मणी जिन भगवान की पूजा में अपना चित्त लगाती थी और इन्द्राणी के समान जैनधर्म में तत्पर हो गई थी। उस समय वह ब्राह्मणी सम्यग्ज्ञानी शुद्धचारित्र धारी उत्तम मुनियों को पापनाशक शुभ आहार देती थी।

इसी प्रकार स्त्रियों की धार्मिक स्वतंत्रता के अनेक उदाहरण मिलते हैं। जहाँ तुलसीदासजी ने लिख मारा है कि—

ढार गंवार शूद्र अरु नारी ।
ये सब ताड़न के अधिकारी ॥

वहाँ जैनधर्म ने स्त्रियों को प्रतिष्ठा करना बताया है, सन्मान करना सिखाया है और उन्हें समान अधिकार दिये हैं। जहाँ वेदों में स्त्रियों को पढ़ाने की आज्ञा नहीं है वहाँ जैनियों के प्रथम तीर्थंकर भगवान आदिनाथ ने स्वयं अपनी ब्राह्मी और सुन्दरी नामक पुत्रियों को पढ़ाया था। उन्हें स्त्री जाति के प्रति बहुत सन्मान था। पुत्रियों को पढ़ाने के लिये वे इस प्रकार उपदेश करते हैं कि—

इदं वपुर्वयश्चेदमिदं शीलमनीदृशं ।
विद्यया चेद्विभूष्येत सफलं जन्म वामिदं ॥६७॥

विद्यावान् पुरुषो लोके सम्मतिं याति कोविदैः ।
नारी च तद्वती धत्ते स्त्रीसृष्टेरग्रिमं पदं ॥ ६८ ॥

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

तद्विद्या ग्रहणे यत्नं पुत्रिके कुरुतं युवां ।
तत्संग्रहणकालोऽयं युवयोर्वर्ततेऽधुना ॥ १०२ ॥

आदिपुराण पर्व १६ ।

अर्थात्—पुत्रियो ! यदि तुम्हारा यह शरीर अवस्था और अनुपम शील विद्या से विभूषित किया जावे तो तुम दोनों का जन्म सफल हो सकता है । संसार में विद्यावान् पुरुष विद्वानों के द्वारा मान्य होता है । अगर नारी पढ़ी लिखी विद्यावती हो तो वह स्त्रियों में प्रधान गिनी जाती है । इस लिये पुत्रियो ! तुम भी विद्या ग्रहण करने का प्रयत्न करो । तुम दोनों को विद्या ग्रहण करने का यही समय है ।

इस प्रकार स्त्री शिक्षा के प्रति सद्भाव रखने वाले भगवान् आदिनाथ ने विधिपूर्वक स्वयं ही पुत्रियों को पढ़ाना प्रारंभ किया। इस संबध में विशेष वर्णन आदिपुराण के इसी प्रकरण से ज्ञात होगा । इससे मालूम होगा कि इस युग के सृष्टा भगवान आदिनाथ स्वामी स्त्री शिक्षा के प्रचारक थे । उन्हें स्त्रियों के उत्थान की चिंता थी और वे स्त्रियों को समानाधिकारिणी मानते थे ।

मगर खेद है कि उन्हीं के अनुयायी कहे जाने वाले कुछ स्वार्थियों ने स्त्रियों को विद्याध्ययन, पूजा प्रक्षाल आदि का अनधिकारी बताकर स्त्री जाति के प्रति घोर अन्याय किया है । स्त्री जाति के अशिक्षित रहने से सारे समाज और देश का जो भारी नुकसान हुआ है वह अवर्णनीय है । स्त्रियों को मूर्ख रख कर स्वार्थी पुरुषों ने उनके साथ पशु तुल्य व्यवहार करना प्रारंभ कर दिया और मनमाने ग्रंथ बनाकर उनकी भर पेट निन्दा कर डाली । एक स्थान पर नारी निन्दा करते हुये एक विद्वान् ने लिखा है कि—

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

आपदामकरो नारी नारी नरकवर्तिनी ।
विनाशकारणं नारी नारी प्रत्यक्षराक्षसी ॥

इस विद्वेष, पक्षपात और नीचता का क्या कोई ठिकाना है ? जिस प्रकार स्वार्थी पुरुष स्त्रियों के निन्दा सूचक श्लोक रच सकते हैं उसी प्रकार स्त्रियाँ भी यदि विदुषी होकर ग्रंथ रचना करती तो वे भी यों लिख सकती थी कि—

पुरुषो विपदां खानिः पुमान् नरकपद्धतिः ।
पुरुषः पापानां मूलं पुमान् प्रत्यक्षराक्षसः ॥

कुछ जैन ग्रन्थकारों ने तो पीछे से न जाने स्त्रियों के प्रति क्या क्या लिख मारा है। कहीं उन्हें विष वेल लिखा है तो कहीं जहरीली नागिन लिख मारा है, कहीं विष बुझी कटारी लिखा है तो कहीं दुर्गुणों की खान लिख दिया है। इस प्रकार लिख लिखकर पक्षपात से प्रज्वलित अपने कलेजों को ठंडा किया है। मानो इसी के उत्तर स्वरूप एक वर्तमान कवि ने बड़ी ही सुन्दर कविता में लिखाहै कि—

वीर, बुद्ध अरु राम कृष्ण से अनुपम ज्ञानी ।
तिलक, गोखले, गांधी से अद्भुत गुण खानी ॥
पुरुष जाति है गर्व कर रही जिन के ऊपर ।
नारि जाति थी प्रथम शिक्षिका उनकी भूपर ॥
पकड़ पकड़ उँगली हमने चलना सिखलाया ।
मधुर बोलना और प्रेम करना सिखलाया ॥
राजपूतिनी वेष धार मरना सिखलाया ।
व्याप्त हमारी हुई स्वर्ग अरु भू पर माया ॥
पुरुष वर्ग खेला गोदी में सतत हमारी ।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

भले बना हो सम्प्रति हम पर अत्याचारी ॥
किन्तु यही सन्तोष हटो नहिं हम निज प्रण से।
पुरुष जाति क्या उऋण हो सकेगी इस ऋण से॥

भगवान महावीर स्वामी के शासन में महिलाओं के लिये बहुत उच्च स्थान है। महावीर स्वामी ने स्वयं अनेक महिलाओं का उद्धार किया है। चन्दना सती को एक विद्याधर उठा ले गया था, वहाँ से वह भीलों के पंजे में फँस गई। जब वह जैसे तैसे छूटकर आई तब स्वार्थी समाज ने उसे शंका की दृष्टि से देखा। एक जगह उसे दासी के स्थान पर दीनतापूर्ण स्थान मिला। उसे सब तिरस्कृत करते थे तब भगवान महावीर स्वामी ने उसके हाथ से आहार ग्रहण किया और वह भगवान महावीर के संघ में सर्वश्रेष्ठ आर्यिका हो गई। तात्पर्य यह है कि जैन धर्म में महिलाओं को उतना ही उच्च स्थान है जितना कि पुरुषों को। यह बात दूसरी है कि जैन समाज आज अपने उत्तरदायित्व को भूल रहा है।

वैवाहिक उदारता।

जैनधर्म की सब से अधिक प्रशंसनीय एवं अनुकूल उदारता तो विवाह संबंधी है। यहाँ वर्णादि का विचार न कर के गुणवान वर कन्या से संबंध करने की स्पष्ट आज्ञा है। हरिवंशपुराण को स्वाध्याय करने से मालूम होगा कि पहले विजातीय विवाह होते थे, असवर्ण विवाह होते थे, सगोत्र विवाह भी होते थे, स्वयंवर होता था, व्यभिचार जात-दस्सों से विवाह होते थे, म्लेच्छों से विवाह होते थे, वेश्याओं से विवाह होते थे, यहाँ तक कि कुटुम्ब में भी विवाह हो जाते थे। फिर भी ऐसे विवाह करने वालों का न तो मन्दिर बन्द होता था, न जाति विरादरी से वह खारिज किये जाते

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

थे और न उन्हें कोई घृणा की दृष्टि से देखता था *।

मगर खेद है कि आज कुछ दुराग्रही लोग कल्पित उपजातियों खण्डेलवाल, परवार, गोलालारे, गोलापूर्व, अग्रवाल, पद्मावती पुरवाल, हूमड़ आदि में परस्पर विवाह करने से धर्म को बिगड़ता हुआ देखने लगते हैं। उन्हें खबर नहीं है कि—

१—श्रेणिक राजा ने ब्राह्मण की लड़की नन्दश्री से विवाह किया था। २–अपनी पुत्री धन्यकुमार वैश्य को दी थी। ३–राजा जयसेन ने अपनी पुत्री पृथ्वी सुन्दरी प्रीतिंकर वैश्य को दी थी। ४–राजा उपश्रेणिक ने भील की लड़की तिलकवती से विवाह किया था। ५–सम्राट चन्द्रगुप्त ने ग्रीस देश के (म्लेच्छ) राजा सैल्यूकस की कन्या से विवाह किया था। ६–म्लेच्छ की कन्या जरा से नेमिनाथ के काका वसुदेव ने विवाह किया था। ७–चारुदत्त (वैश्य) की पुत्री गंधर्वसेना ने राजा वसुदेव (क्षत्री) को वरा था। ८–उपाध्याय (ब्राह्मण) सुग्रीव और यशोग्रीव ने भी अपनी दो कन्यायें वसुदेव (क्षत्रिय) को विवाही थीं। ९–ब्राह्मण कुल में क्षत्रिय माता से उत्पन्न हुई कन्या सोमश्री को वसुदेव ने विवाहा था। १०–सेठ कामदत्त (वणिक्) ने अपनी कन्या बंधुमती का विवाह वसुदेव से कर दिया था। इसी प्रकार से १० नहीं किन्तु दस सौ उदाहरण पेश किये जा सकते हैं; जिनसे मालूम होगा कि ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र तथा म्लेच्छों की भी कन्याओं से विवाह करना कोई पाप नहीं है। ऐसा करने से न तो धर्माधिकार मिटता है और न कोई लौकिक हानि ही होती है। भगवज्जिनसेनाचार्य ने तो आदिपुराण में स्पष्ट उल्लेख किया है कि—

---

* इस विषय का विस्तार पूर्वक एवं सप्रमाण जानने के लिये श्री० पं० जुगलकिशोरजी मुख्तार लिखित 'विवाह क्षेत्र प्रकाश' देखने के लिये हम पाठकों से सानुरोध अनुरोध करते हैं। —लेखक

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

शूद्रा शूद्रेण वोढव्या नान्या स्वां तां च नैगमः ।
वहेत् स्वां ते च राजन्यः स्वां द्विजन्मा क्वचिच्चताः ॥

अर्थात्—शूद्र को शूद्र की कन्या से विवाह करना चाहिये, वैश्य वैश्य की तथा शूद्र की कन्या से विवाह कर सकता है, क्षत्रिय अपने वर्ण की तथा वैश्य और शूद्र की कन्या से विवाह कर सकता है और ब्राह्मण अपने वर्ण की तथा शेष तीन वर्ण की कन्याओं से भी विवाह कर सकता है।

इतना स्पष्ट कथन होते हुए भी जो लोग कल्पित उपजातियों में (अन्तर्जातीय) विवाह करने में धर्म कर्म की हानि समझते हैं उनकी बुद्धि के लिये क्या कहा जाय ? अदीर्घदर्शी, अविचारी एवं हठग्राही लोगों को जाति के झूठे अभिमान के सामने आगम और युक्तियाँ व्यर्थ दिखाई देती हैं। जब कि लोगों ने जाति का हठ पकड़ रखा है तब जैन ग्रंथों ने जाति कल्पना की धज्जियाँ उड़ा दी हैं। यथा—

अनादाविह संसारे दुर्वारे मकरध्वजे ।
कुले च कामनीमूले का जातिपरिकल्पना ॥

अर्थात्—इस अनादि संसार में कामदेव सदा से दुर्निवार चला आ रहा है। तथा कुल का मूल कामनी है। तब उसके आधार पर जाति कल्पना करना कहां तक ठीक है? तात्पर्य यह है कि न जाने कब कौन किस प्रकार से कामदेव की चपेट में आ गया होगा। तब जाति या उसकी उच्चता नीचता का अभिमान करना व्यर्थ है। यही बात गुणभद्राचार्य ने उत्तरपुराण के पर्व ७४ में और भी स्पष्ट शब्दों में इस प्रकार कही है—

वर्णाकृत्यादिभेदानां देहेऽस्मिन्न च दर्शनात् ।
ब्राह्मण्यादिषु शूद्राद्यैर्गर्भाधानप्रवर्तनात् ॥४९१॥

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

अर्थात् इस शरीर में वर्ण या आकार से कुछ भेद दिखाई नहीं देता है। तथा ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्यों में शूद्रों के द्वारा भी गर्भाधान की प्रवृत्ति देखी जाती है। तब कोई भी व्यक्ति अपने उत्तम या उच्च वर्ण का अभिमान कैसे कर सकता है? तात्पर्य यह है कि जो वर्तमानमें सदाचारी है वह उच्च है और जो दुराचारी है वह नीच है।

इस प्रकार जाति और वर्ण की कल्पना को महत्व न देकर जैनाचार्यों ने आचरण पर जोर दिया है। जैनधर्मकी इस उदारता को ठोकर मार कर जो लोग अन्तजातीय विवाह का भी निषेध करते हैं उनकी दयनीय बुद्धि पर विचार न करके जैन समाज को अपना क्षेत्र विस्तृत, उदार एवं अनुकूल बनाना चाहिये।

जैन शास्त्रों को, कथा ग्रंथों को या प्रथमानुयोग को उठाकर देखिये, उनमें आपको पद पद पर वैवाहिक उदारता नजर आयगी। पहले स्वयंवर प्रथा चालू थी, उसमें जाति या कुल की परवाह न करके गुण का ही ध्यान रखा जाता था। जो कन्या किसी भी छोटे या बड़े कुल वाले को उसके गुण पर मुग्ध होकर विवाह लेती थी उसे कोई बुरा नहीं कहता था। हरिवंश पुराण में इस सम्बन्ध में स्पष्ट लिखा है कि—

कन्या वृणीते रुचिरं स्वयँवरगता वरं।
कुलीनमकुलीनं वा क्रमो नास्ति स्वयम्वरे ॥११–७१॥

अर्थात्—स्वयंवरगत कन्या अपने पसंद वर को स्वीकार करती है, चाहे वह कुलीन हो या अकुलीन। कारण कि स्वयंवर में कुलीनता अकुलीनता का कोई नियम नहीं होता है।

अब विचार करिये, कि जहां कुलीन अकुलीन का विचार न करके इतनी वैवाहिक उदारता बताई गई है वहां अन्तर्जातीयविवाह तो कौनसी बड़ी बात है। इसमें तो एक ही जाति, एक ही धर्म,

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

और एक ही आचार विचार वालोंसे संबंध करना है। यह विश्वास रखिये कि जब तक वैवाहिक उदारता पुनः चालू नहीं होगी तबतक जैन समाज की उन्नति होना कठिन ही नहीं किन्तु असंभव है।

उपसंहार

जैनधर्म की उदारता के सम्बन्ध में तो जितना लिखा जाय थोड़ा है। जैनधर्म सभी बातों में उदार है। मैं जैन हूं इसलिये नहीं किन्तु सत्य को सामने रखकर यह बात दावे के साथ कह सकता हूं कि "जितनी उदारता जैनधर्म में पाई जाती है उतनी जगत के किसी भी धर्म में नहीं मिल सकती"। यह बात दूसरी है कि आज जैन समाज उससे विमुख होकर जैनधर्म को कलंकित कर रहा है। इस छोटी सी पुस्तक के कुछ प्रकरणों से जैनधर्म की उदारता का विचार किया जा सकता है। आज भी जैन समाज में कुछ ऐसे साधु पुरुषों का अस्तित्व है जो जैनधर्म की उदारता को पुनः अमल में लाने का प्रयत्न करते हैं। दि० मुनि श्री सूर्यसागरजी महाराज के कुछ विचार इस सम्बन्ध में "पतितोंका उद्धार" प्रकरण में लिखे गये हैं। उसके अतिरिक्त अभी कुछ समय पूर्व जब वे संघ सहित अलीगंज पधारे थे तब उनने एक जैनेतर भाई के प्रश्नों का उत्तर जिन उदार भावों से दिया था उनका कुछ सार इस प्रकार है—

"शूद्र यदि श्रावकाचार पालता हो और सच्छूद्र हो तो उसके यहां साधु आहार भी ले सकता है। शूद्र ही नहीं चाण्डाल तक धर्म का पालन कर सकता है। जैन धर्म ब्राह्मण या बनियों का धर्म नहीं है, वह प्राणी मात्र का धर्म है। आजकल के बनियों ने उसे तालों में बंदकर रखा है। सच्छूद्र अवश्य पूजन करेगा। जिसे आप नहीं छूना चाहते मत छुओ। मगर मन्दिर के आगे मानस्तंभ रखो वह उनकी पूजा करेंगे।" इत्यादि।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

यदि इसी प्रकार के उदार विचार हमारे सब साधुओं के हो जावें तो धर्म का उद्धार और समाज का कल्याण होने में विलम्ब न रहे ! मगर खेद है कि कुछ स्वार्थी एवं संकुचित दृष्टि वाले पण्डितमन्यों की चुंगल में फंस कर हमारा मुनि संघ भी जैनधर्म भी उदारता को भूल रहा है।

अब तो इस समय सच्चा काम युवकों के लिये है। यदि वे जागृत होजावें और अपना कर्तव्य समझने लगें तो भारत में फिर वही उदार जैन धर्म फैल जावे।

उत्साही युवको ! अब जागृत होओ, संगठन बनाओ, धर्म को पहिचानो और वह काम कर दिखाओ जिन्हें भगवान अकलंकादि महापुरुषों ने किया था। इसके लिये स्वार्थ त्याग करना होगा, पंचायतों का झूठा भय छोड़ना होगा, बहिष्कार की तोपको अपनी छाती पर दगवाना होगा और अनेक प्रकार से अपमानित होना होगा। जो भाई बहिन तनिक तनिक से अपराधों के कारण जाति पतित किये गये हैं उन्हें शुद्ध करके अपने गले लगाओ, जो दीन हीन पतित जातियाँ हैं उन्हें सुसंस्कारित कर के जैनधर्मी बनाओ, स्त्रियों और शूद्रों के अधिकार उन्हें बिना मांगे प्रदानकरो तथा समझाओ कि तुम्हारा क्या कर्तव्य है। अन्तर्जातीय विवाह का प्रचार करो और प्रतिज्ञा करो कि हम सजातीय कन्या मिलने पर भी विजातीय विवाह करेंगे। जैनधर्म के उदार सिद्धान्तों का जगत में प्रचार करो और सब को बतादो कि जैनधर्म जैसी उदारता किसी भी धर्म में नहीं है। यदि हमारा युवक समुदाय साहस पूर्वक कार्य आरम्भ करदे तो मुझे विश्वास है कि उसके साथ सारी समाज चलने को तैयार हो जायंगी। और वह दिन भी दूर नहीं रहेंगे जब स्थिति पालक दल अपनी भूल को समझ कर जैनधर्म की उदारता को स्वीकार करेगा। सच बात तो यह है कि—

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

"अयोग्यः पुरुषो नास्ति, योजकस्तत्र दुर्लभः"

आज हमारी समाज में सच्चे निस्वार्थी योजक की कमी है। उसकी पूर्ति भी युवकों के हाथ में है। वास्तविक धर्म की उदारता नीचे के ४ पद्यों से ही मालूम हो जावेंगी।

धर्म वही जो सब जीवों को भव से पार लगाता हो।
कलह द्वेष मात्सर्य भाव को कोसों दूर भगाता हो॥
जो सब को स्वतन्त्र होने का सच्चा मार्ग बताता हो।
जिसका आश्रय लेकर प्राणी सुखसमृद्धि को पाता हो॥१॥

जहाँ वर्ण से सदाचार पर अधिक दिया जाता हो जोर।
तरजाते हों निमिष मात्र में यमपालादिक अंजन चोर॥
जहाँ जाति का गर्व न होवे और न हो थोथा अभिमान।
वहीधर्म है मनुजमात्र को हो जिसमें अधिकार समान॥२॥

नर नारी पशु पक्षी का हित जिसमें सोचा जाता हो।
दीन हीन पतितों को भी जो प्रेम सहित अपनाता हो॥
ऐसे व्यापक जैनधर्म से परिचित करदो सब संसार।
धर्म अशुद्ध नहीं होता है खुला रहे यदि सबको द्वार॥३॥

प्रेमभाव जग में फैलादो और सत्य का हो व्यवहार।
दुरभिमान को त्याग अहिंसक बनो यही जीवन का सार॥
जैनधर्म की यह उदारता अब फैलादो देश विदेश।
'दास' ध्यान देना इस पर यह महावीर का शुभ सन्देश॥४

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

पं० परमेष्ठीदासजी जैन न्यायतीर्थ लिखित—

यह पुस्तकें आज ही मंगा कर पढ़िये।

(१) चर्चासागर समीक्षा— इसमें गोबर पंथी ग्रन्थ 'चर्चासागर' की खूब पोल खोली गई है। और दुराग्रही पण्डितों की युक्तियों की धज्जी २ उड़ाई गई है। इस समीक्षा के द्वारा जैन साहित्य पर लगा हुआ कलंक धोया गया है। प्रत्येक समाज हितैषी को यह पुस्तक अवश्य पढ़ना चाहिये। पृष्ठ संख्या ३०० होने पर भी मूल्य मात्र ॥=) रखा है।

(२) दान विचार समीक्षा—क्षुल्लक वेषी ज्ञानसागर द्वारा लिखी गई अज्ञानपूर्ण पुस्तक 'दानविचार' की यह युक्ति आगमयुक्त और बुद्धिपूर्ण समीक्षा है। धर्म के नाम पर रचे गये, मलीन साहित्य का भान कराने वाली और इस मैल से दूषित हृदयों को शुद्ध करने वाली यह समीक्षा आपको एक वार अवश्य पढ़ जाना चाहिये। पृ० ९५ मूल्य मात्र =) है।

(३) परमेष्ठि पद्यावली—इसमें महावीर जयन्ती, श्रुत-पंचमी, रक्षा बंधन, पर्यूषण पर्व, दीपावली, होली आदि से संबंध रखने वाली तथा सामाजिक, धार्मिक, राष्ट्रीय एवं युवकों में जीवन डाल देने वाली करीब ५० सुललित भावमय कविताओं का संग्रह है। मूल्य मात्र =)

सूर्यप्रकाश समीक्षा—लेखक पंडित जुगलकिशोर मुख्तार पृ० १९६ मूल्य छह आने।

मंगाने के पते—

(१) जौहरीमल जैन सर्राफ, बड़ा दरीबा देहली।

(२) दिगम्बर जैन पुस्तकालय, सूरत।

(३) जैनसाहित्य प्रसारक कार्यालय हीरा बाग बम्बई।

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com

Shree Sudharmaswami Gyanbhandar-Umara, Surat www.umaragyanbhandar.com